लड़का हो कोल

एक परिचय

कमल लोचन कोड़ाह 'हो'

BVP - 2059

3|5|18

4/9

लड़का हो कोल : एक परिचय

लड़का हो कोल : एक परिचय

लेखक
कमल लोचन कोड़ाह 'हो'

झारखण्ड झरोखा, राँची

ISBN : 978-93-81720-92-9

प्रथम संस्करण : 2014

सर्वाधिकार © : लेखक

प्रकाशक : झारखण्ड झरोखा
शोप नं.- डी. जी. 03, न्यू बिल्डिंग, न्यू मार्केट,
रातू रोड, राँची, (झारखण्ड), पिन नं. 834001
मो. 09973112040, 09471160792
E-mail : jharkhandjharokha@yahoo.com

अजिल्द : 130.00
सजिल्द : 300.00

LARKA HO KOL : EK PARICHAY
by - Kamal Lochan Koraha "Ho"

दो शब्द

"लड़का हो कोल : एक परिचय" नाम से स्पष्ट है कि इसमें हो जनजाति का परिचय निहित है। इन्होंने प्रकाशित यत्र-तत्र बिखरी कविताओं व आलेखों का इसमें संकलन किया है। इसमें हो जनजाति की प्राचीनता एवं उनका गौरवशाली इतिहास वर्णित है। विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत 'कोल' शब्द के अर्थ, उनके इतिहास, समृद्ध साहित्य व संस्कृति पर चर्चा की है। छोटानागपुर के कोल्हान-पोड़ाहाट में मुण्डा- मानकी शासन व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है जो आदिवासियों की परम्परागत रीति-रिवाज पर आधारित है। यह व्यवस्था अब भी यथावत् है।

हो आदिवासी की शारीरिक संरचना के संदर्भ में गैर आदिवासी लेखकों की अलग-अलग धारणा रही है। लेखक ने वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में उन धारणाओं का खंडन किया है। इनकी पहचान व अस्मिता को बनाये रखने के लिए हुए आक्रमणों पर प्रकाश डाला है। इतना ही नहीं लेखक ने 'मैं हड़िया हूँ मुझमें है नशा' नामक कविता में इसके गुण-अवगुण का चित्रण किया है। सुधि पाठकों को इसका लाभ "लड़का हो कोल : एक परिचय" के रूप में मिलेगा।

मेरी आशा है कि श्री कमल लोचन कोड़ाह हो साहित्य की श्रीवृद्धि में अपनी सृजनशीलता बनाए रखेंगे। अपनी नवीन सृजन से विद्यार्थियों, शोधार्थियों व ज्ञान पिपासु सुधि पाठकों की जिज्ञासा को तृप्त करेंगे। मेरा विश्वास है सभी इसका स्वागत सहृदयता से करेंगे।

हार्दिक बधाई एवं मंगल कामनाओं सहित!

डॉ. सरस्वती गागराई

प्राक्कथन

'लड़का हो कोल : एक परिचय' पुस्तक में भारत में हो आदिवासी की आदिकालीन प्राचीन निवासता के इतिहास की सत्यता को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

''हो'' शब्द की मूलतः 'हो' की प्रकृति जड़ता एवं वास्तविकता को दर्शाया गया है। 'हो' आदिवासी की शारीरिक बनावट एवं उसके शांत, सरल, सुशील, ईमानदार, दयालु, एकांतप्रिय, स्वतंत्र प्रिय गुणों को सजीवता से प्रस्तुत किया गया है। 'हो' आदिवासी की पहचान, अस्तित्व, इज्जत, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, जल, जंगल, जमीन एवं अपने अधिकारों की रक्षा हेतु युद्ध को पसंन्द करने की प्राकृतिक स्वभाव की वास्तविकता को प्रस्तुत किया गया है।

हो आदिवासी को ''कोल'' शब्द से सम्बोधित किया जाता है। ''कोल'' शब्द की प्रकृति की मूलतः पौरुषता एवं पवित्रता को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। 'हो' आदिवासी द्वारा ''कोल'' शब्द से घृणा एवं स्वीकारोक्ति पक्ष को भी दर्शाया गया है।

सिन्दु गाटो (सिन्धु घाटी), मेंजोदेइ-हो (मोहन जोदड़ो), हो-रप्पाः (हड़प्पा), आजोम गड़ा (आजोम गढ़), चन्दु दइ हो (चान्दु दड़ो), मान्दा (मांदा), सुरकोदः (सुरकोतदा), रो-पड़ा (रापड़), हिसिर (हिसार), एवं लो-तला (लोथल) यादि स्थानों में हो आदिवासी की प्राचीन निवास की सत्यता की प्रमाणिकता को दर्शाया गया है।

सिन्दु गाटो, मेंजोदइ हो एवं हो-रप्पाः में हो आदिवासी की समृद्ध भाषा, वैज्ञानिक लिपि, विकसित साहित्य, उन्नत कृषि एवं उन्नत व्यापार तथा हो आदिवासी (''हो'' अनार्य) एवं आर्य (दिकु) के साथ युद्ध की विभिषिका और युद्ध में 'हो' (''हो'' अनार्य) की पराजय एवं दाह-संस्कार की इतिहासिक घटना को प्रस्तुत किया गया है।

हो आदिवासी की पांरम्परिक देशज मानकी-मुण्डा प्रशासन व्यवस्था की मौलिकता; हो समाज में मानकी-मुण्डा का अस्तित्व एवं हुकुमनामा में दर्ज मानकी-मुण्डाओं के अधिकारों का उल्लेख किया गया है।

हो आदिवासी का हो-धर्म की प्रकृत्ति और सृष्टि का सर्वोच्च अलौकिक सर्वशक्तिमान, सृष्टिकर्त्ता - ''सिंङबोंगा'' के प्रति हो आदिवासियों की आस्था को प्रस्तुत किया गया है तथा हो आदिवासियों का पुजा-स्थल-''देसाउलि'' एवं ''जएरा''

की पवित्रता, देसाउलि एवं 'जएरा' में बोंगा बुरू (देवी-देवताओं) का वास और 'देसाउलि' एवं 'जएरा' के पर्यावरण की महत्व को दर्शाया गया है।

'हो' आदिवासी जो संसार के महान जाति है। 'हो' के प्राकृतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन एवं जीवन दर्शन के आलोक में;- "हो आदिवासी हिन्दू नहीं है" की वास्तविकता को प्रस्तुत किया गया है।

आदिकाल से-'हड़िया" हो आदिवासियों का बोंगा-बुरू (देवी-देवता) को अर्पित करने का पवित्र भोग रहा है। आदि मानव लुकु-लुकुमि दोनों भाई-बहन की तरह रहा करते थे। जिससे वंश-वृद्धि नहीं हो रही थी। के आलोक में ततङ (सिंङबोंगा) लुकु-लुकुमि को रानु एवं हड़िया बनाने की तकनिकि विधि बताता है। सिंङबोंगा के आदेशानुसार लुकु-लुकुमि हड़िया बनाते हैं। हड़िया सातवाँ दिन तैयार होता है। 'ततङ के नहीं के धुसा से लुकु-लुकुमि' हड़िया का सेवन करता है। हड़िया के सेवन से दोनों नशा से बेसुध हो जाते हैं। फलस्वरूप नशा की हालत् में लुकु-लुकुमि में शारीरिक संबंध स्थापित होता है। लुकुमि गर्भ को धारण करती है। इस तरह हो आदिवासी का वंश-वृक्ष का प्रतिफल "हड़िया" ही रहा है। हो आदिवासी पहाड़ों में जगंली-जानवरों के बीच रहकर, जंगल पहाड़ों को काटकर, साफ कर, गढ़ा-डीपा को समतल कर खेत बनाया और कृषि को आर्थिक स्रोत का साधन के रूप में अपना कर समृद्ध आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन को संवारा है। भाषा को जीवित रखा है। साहित्य का विकास किया है। जीवन को संवारा है। इस क्रिया में हड़िया की रोमांचक लोक कथा की सत्यता को प्रस्तुत किया गया है।

वर्त्तमान में हो आदिवासी हाट-बाजारों में हड़िया बेचकर हड़िया की पवित्रता को अपवित्र कर रहा है। आज हो-आदिवासी हड़िया पीकर मान-मानसिक को दूषित कर रहा है। शरीर को भी रोग-ग्रस्त बना रहा है। धार्मिक पवित्रता, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को गर्त में ले जा रहा है तथा शिक्षा की ज्योति से दूर भविष्य की जिन्दगी को पतन की ओर ले जा रहा है, की यथार्थ को, इस कविता में देखा जा सकता है :-

(क)

मैं हड़िया हूँ मुझ में है नशा
हे, आदिवासी
मैं तुम में हूँ, तुम मुझ में हो
मैं सृष्टि का प्रतीक हूँ

पुरखों का हृदय
मैं देवताओं का भोग हूँ
और पुरखों का प्रसाद
मैं लुकु-लुकुमि की मर्यादा हूँ
जाति और समाज का मान हूँ
धर्म और संस्कृति की मर्यादा हूँ।
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है नशा।

(ख)

मैं हड़िया हूँ, मुझ में है नशा
हे आदिवासी
मुझे देखो, मुझे समझो
गुण-दोष से युक्त
अमृत और जहर हूँ
प्यार हूँ प्रेम भी हूँ
जोश हूँ होश भी हूँ
गम हूँ, दम भी हूँ
दवा हूँ, औषधि भी हूँ
मैं तबाही और बबार्दी का घर हूँ
सुख और शांति का खजाना भी हूँ
तभी तो मैं पुरखों का ताज हूँ
तुम मुझे पीने और नशा की वस्तु समझा
तभी तो तुम
मुझे पीकर बर्बाद हो गये
बाल-बच्चे तुम्हारे बेकार हो गये
खेत खलिहान जोरु जमीन
सब कुछ तुम्हारे लुट गये
भाई-भाई में झगड़ गये

अपनों में ही मार काट गये
बिखर गये सारे अपने
न इज्जत रही न अस्मिता
मैं हड़िया हूँ, मुझ में है नशा।

(ग)

मैं हड़िया हूँ, मुझ में है नशा।
हे आदिवासी
तुम महान हो
वैज्ञानिक युग का आदमी हो
बीसवीं शताब्दी का आदिवासी हो
विवेकशील हो, विद्वान हो
गर्व की बात तो, तुम आदिवासी हो
मेरी कसम
तुम मुझे पीना छोड़ दो,
तुम्हारे पुरखों की कसम
तुम मुझे बेचना छोड़ दो
देखो
तुम्हारा जीवन अनमोल है
उठो? जागो?
अपनी बिखरी जिन्दगी को निहारो
औरत, बाल-बच्चों को सम्भालो
टूटा घर परिवार को संवारो
इज्जत आबरू की रक्षा करना
खेत खालियान की रक्षा करना
जाति समाज को रोशन करना
मेरी यही तमन्ना है
पुरखों का भी यही अरमान है
तुम्हें कुछ कर दिखलाना है

मैं हड़िया हूँ,
मुझ में है नशा।।

कोल गुरु लाको बोदरा, जो "बारङ चित्ति" के जनक थे। हो आदिवासी में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों को दूर करने के लिए सामाजिक सुधारवादी सिद्धांत, सांस्कृतिक सुधारवादी सिद्धांत, लाको आदि के सुधारवादी सिद्धांत तथा लाको धर्म के सिद्धांत को प्रतिपादित किया है। अतः लाको धर्म के सिद्धांत, शर्त्त एवं उदेश्यों के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है।

झारखण्ड की एक आदिवासी गरीब औरत, जिसका दुनिया में कोई नहीं है की दरिद्रता की व्यथा-कथा की मार्मिकता का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यथाः-

झारखण्ड की बेटी, आदिवासी लड़की
जा रही है। मजदूरी करने
दुःखी दिल से गरीब-औरत
पेट-छाती सट गया है
तन में खून नहीं है उसका
आँखों में आँख के आँसू
हाथ में बासी भात का पानी
जा रही है, मजदूरी करने
पहनी है, फटा कपड़ा
दिख रहा है, आर-पार
लाज-शर्म कैसे ढकेगी
नहीं है, अच्छा कपड़ा
माँ की गोद में, सुख की नीद में
रोते-रोते सो गया बच्चा
माँ के स्तन में नहीं है दूध
पेट भर कैसे पिलाएगी
दूध बच्चे को
रास्ता किनारे, चिलचिलाती धूप में

सुला दिया है मासूम जीवन को
एक मुट्ठी दाने की चाह में
जीने और जीलाने की तमन्ना में
मजदूरी कर रही है, दुःखी दिल से।।

मैं इस पुस्तक के प्रस्तावना लेखन के लिए डॉ. सरस्वती गागराई के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक में अनेक लेखकों के विचारों को उद्धृत एवं संदर्भित किया गया है, उनके प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं पुस्तक के प्रकाशक झारखण्ड झरोखा, राँची को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिनके सहयोग से यह पुस्तक समय पर प्रकाशित हो सका। मेरी प्यारी धर्मपत्नी श्रीमति गंगी कोड़ाह, जिन्होंने मुझे कठिन परिस्थितियों में भी पुस्तक लेखन की प्रेरणा दी है, को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

आशा है कि इस पुस्तक के पाठकों को हो आदिवासी समुदाय का परिचय, इसके इतिहासिक पृष्ठभूमि एवं संघर्ष तथा सामाजिक, पांरम्परिक शासन व्यवस्था, संस्कृति और समस्याओं को समझने में मदद मिलेगी।

स्थान :- बारियातु, राँची
तिथि :- 01.01.15

कमल लोचन कोड़ाह 'हो'
सेवा निवृत अवर सचिव,
कार्मिक, प्रशासनिक सुधार एवं
राजभाषा विभाग, झारखण्ड सरकार

विषय – सूचि

		पृष्ठ संख्या
01.	जोअर	13
02.	लड़का हो कोल : एक परिचय	14
03.	हो आदिवासी की शारीरिक बनावट एवं स्वभाव	20
04.	सिन्दु दिसुम के मूल जाति की प्राचीनता : एक परिचय	25
05.	मानकी मुण्डा प्रशासन की रूपरेखा : संक्षिप्त परिचय	35
06.	हो धर्म और सिंङबोंगा	42
07.	हो जाति के देसाउलि एवं जएरा : एक परिचय	47
08.	हो आदिवासी हिन्दू नहीं हैं	55
09.	मागे लोक कथा	61
10.	हो आदिवासी और हड़िया	66
11.	मैं हड़िया हूँ, मुझ में है नशा	84
12.	गुरू लाको बोदरा का धार्मिक जीवन	89
13.	गरीब औरत	93

1. जोअर

हो-अम
सिरमा रेन सिड.बोंगा
ओते दिसुम गोमके
होयो लेका सपा
दः लेका सपा
दरू दिरि रे अम
जियु-जोन्तु रे सम
नेल उरूम बनोः अले
होयो लेका सएका अम ।।

ए सिंङबोंगा, जोअर तना ले
विनती तना ले, गोअरि तना ले
जियु-जोन्तु तन, मनोआ तन
अयुम लेमे, तेला लेमे
होरो तले में, जंगि तले में
उरूम तलेम केयल तले में
लुकु हड़म होन लुकुमि बुड़ि होन
अदम हड़म हव्वा बुड़ि होन
मुंनु कड़ो रे, दः दिसुम रे
बिर-दरू, बिर तसड क रे
मनोआ जियु-जोन्तु, उपन-जपन क रे
लेन्डड किञ जोम बुरू रे
कहकोम लोटोड. जाम्बु-डिपा रे
जोनोम लेन मरं लेन मरं बुरू
उपन लेन मरं लेन मरं बुरू
रो-हसा रे, अदम बगान रे
दरू लेन, मरं लेन हंब्बा ।
इया दोरेया तला, इया बन्देला तला
एन होन्को, एन जियु को
नितिर लेन पसिर लेन
तड़ए बा दिसुम रे
जोअर ...जोअर.... जोअर तञ..... सिड.बोंगा ।।

2. लड़का हो कोल : एक परिचय

1 : 1 हो – हो जाति गौरवशाली मुण्डा परिवार का एक सदस्य है। प्राचीन काल में हो - आदिवासी समूचे भारतवर्ष में फैले हुए थे। 'जिनोंम विविधता परियोजना (जेंडिय) की खोज के अनुसार 'हो' जनजाति भारत के प्रथम निवासी हैं, इन्हें आँस्ट्रो- एशियाई भाषाई के ग्रुप का कहा जाता है। शोध के अनुसार आँस्ट्रो - एशियाई लोंसा आज से लगभग 60,000 साल पहले अफ्रीका से भारत आये थे। हो का अपना लिखित इतिहास, साहित्य तथा वैज्ञानिक-लिपि रही है तथा उन्नत कृषि प्रजाति रही है।

अतः ये अति प्राचीन काल में आर्यो द्वारा सिन्धु घाटी, हड़प्पा तथा विभिन्न जगहों से भागाये जाने पर 600 ई. पूर्व झारखण्ड प्रदेश आये और झारखण्ड प्रदेश के कोल्हान, क्योंझर, मयुरभंझ आदि क्षेत्र में स्थायी रूप से निवास करने लगे। जहाँ अपनी खूँट-कटी भू-व्यवस्था के साथ समतावादी समाज और परम्पारिक प्रजातान्त्रिक देशज शासन प्रणाली (मानकी मुण्डा शासन प्रणाली) का विकास किया।

हो जाति झारखण्ड प्रदेश के सिंहभूम जिले के अन्तर्गत कोल्हान्, पोड़ाहाट नामक स्थान में मुख्य रूप से पाये जाते हैं। सिंहभूम के प्राचीन इतिहास में छोटानागपुर पठार के अप्रवासित 'हो' लोगों का वर्णन मिलता है। जिसमें सिंहभूम के भुइयाँ जाति के लोगों को परास्त कर उनके बसने का उल्लेख है। हो जाति के लोगों ने जिले के दक्षिणी क्षेत्रों के पहाड़ी हिस्से की सुविधाओं को देखकर वहीं स्वतंत्र होकर बसना पसन्द किया तथा वहीं अपने युद्ध-कौशल के बदौलत, -'लड़का कोल', 'लरका-कोल' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की।

हो का अपना अलग सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं देशज राजनैतिक व्यवस्था है। इसकी अपनी भाषा है, अपना इतिहास है, साहित्य और लिपि है, अपनी अलग पहचान और अस्तित्व है। 'हो' सदैव स्वतंत्र रहा है और स्वतंत्र एवं आजाद रहना पंसद करता है।

डॉ. पुरूषोत्तम कुमार ने हो जाति के विषय में जिक्र किया है कि- ''सिंहभूम में 'लड़का-हो' उसी तरह स्वतंत्र थे, जैसा एशिया में जापान और यूरोपियन स्काटिस हाईलेर्डस थे।

'पुन्डि दिरि लड़का कोल' कहते हैं। जिसका अर्थ होता है, ''सफेद पत्थर के समान स्वच्छ और कठोर लड़ाकू आदमी।''

1 : 5 हो जाति और कोल शब्द की सत्यता

यह अक्षरशः सत्य है कि 'हो' अपने को 'कोल' 'कोल-को' हो-कोल' 'कोल-होन्को और 'कोल-वीर को' कहते हैं।

ज्ञात हो कि हो-जाति का आदि-सृष्टि पुरुष 'लुकु' था और आदि सृष्टि नारी लुकमि थी। हो जाति के लोग लुकु को पिता और लुकुमि को माता मानते हैं और अपने को उनका पुत्र मानते हैं। अतः हो-जाति अपने को लुकु वंश का वंशवृक्ष मानते हैं।

'लुकु' एक कोवा (पुरुष) था। इसी 'कोवा' शब्द का अपभ्रंश रूप ही 'कोल' है। इसलिए हो-जाति के लोग- 'कोल' शब्द को पौरुष रूप का पवित्र एवं पवित्रता का प्रतीक मानते हैं। इसीलिये हो-जाति अपने को 'कोल' कहने में गर्व महसूस करते हैं।

1 : 6 हो-जाति और कोल्हान-दिसुम

विदित हो कि हो-जाति अपने निवास प्रदेश को- 'कोल्हान-दिसुम' एवं 'कोल-को दिसुम' के नाम से सम्बोधित करते हैं।

यह सत्य है कि देशज मानकी मुण्डा -प्रथा के अन्तर्गत 'पीड़' के नाम को 'कोल्हान पीड़' के नाम से उल्लेखित किया गया है।

1.7 'कोल' शब्द और लको बोदरा

हो-भाषा साहित्य के विद्वान एवं 'वारंड. 'क्षिति - लिपि के अन्वेषक स्व. हिला लको बोदरा, अपने को 'कोल लकों बोदरा'' कहा करते थे। उनके अनुयायी भी लको-बोदरा को 'गुरू कोल लको बोदरा' के नाम से सम्बोधित करते हैं।

1 : 8 स्थानीय जातियों द्वारा कोल शब्द का प्रयोग

सिंहभूम में निवास करने वाले विभिन्न अन्य जातियों द्वारा 'कोल' शब्द का प्रयोग हो-जाति को हेय-युक्ति से देखने के रूप में करते हैं चुँकि इन जातियों की

दृष्टि में 'कोल' शब्द अशोभनीय तथा अमानवीय शब्द है। जैसे-

(क) आर्य दिकुओं द्वारा 'हो' जाति के बारे में प्रयुक्त शब्द - "कोल महामूर्ख है, लेकिन वह शाक्तिशाली और महान विद्वान गुरू है।"

(ख) स्थानीय प्रधान जाति (गउ) का हो जाति के बारे में कहावत है, -"कोल करे पाछे बोइद।"(अर्थात्-'कोल जाति बिना सोचे-समझे कुछ भी काम कर बैठता है और उन्हे सोच-समझ एवं सूझ-बूझ के बाद ही बुद्धि आता है)

(ग) दिकु लोगों को -'हो-जाति के प्रति यह कहावत भी प्रचलित है कि - 'कोल का कोल ही रह गया।' (अर्थात् मूर्ख का मूर्ख ही रह गया)

(घ) सिंहभूम के तामड़िया जाति के लोग-हो-जाति को-"पुन्डि दिरि लड़का कोल"कहते हैं। (सफेद पत्थर के समान स्वच्छ और कठोर लड़ाकू-आदमी)

ण01.9 हो विद्वानों का कोल, शब्द के संबंध में मत

हो विद्वानों ने 'हो-जाति' के 'कोल' शब्द को हो-जाति की जातीय युद्ध कौशलता के रूप में देखने का प्रयास किया है।-

(1) घनश्याम गगाराई ने - 'परिचय आदिवासी हो-समाज' पुस्तक में लिखा है कि - "हो समुदाय के लोग वीर, बहादुर एवं लड़ाकू योद्धाओं के रूप में पहचान रखते थे। अतः इन्हें 'लाड़का-हो' के रूप में भी जाना जाता हैं।"

(2) चन्द्रभूषण देवगम ने -'लाड़का-हो' पुस्तक में उल्लेख किया है कि- "हो-जाति की पहचान कभी 'लाड़का-हो' अर्थात् पराक्रमी योद्धाओं के नाम से होती थी। दोस्तों और दुश्मनों ने इस जाति को "बिलक्षण" अन्यायरण" आदि विशेषणों से अलंकृत किया था।"

1 : 10 'हो' के बा-लोक गीतो में कोल, शब्द का दर्शन

'कोल शब्द का उल्लेख हो-जाति के बा-लोक गीत में भी मिलता है। हो-जाति के इस बा-पर्व के अवसर पर गाते हैं-

(क) हो होनेको बा पोरोब तना

कोल्हान दिसुम चिरे हिन्दुस्तान दिसुम,

हो-होने को बा पोराब तना
कोल्हान दिसुम चिरे हिन्दुस्तान दिसुम
कोल होने को बा जदुर तना ।
कोल्हान दिसुम चिरे हिन्दुस्तान दिसुम
सराजोम बा तेको बा पोरोब तना
कोल्हान दिसुम चिरे हिन्दुस्तान दिसुम
सराजोम बा तेको जदुर पोरोब तना।
दोला तेबु लेले जोमा
हो-होने को बा पोरोब तना
दोला तेबु चिने जोमा
कोल होने-को बा जदुर तना।

(ख) ओकान कोरे-गको लड़इ तना

ओकोन कोरे गको लड़इ तना
लड़इ चिटि सकम ओटड. लेना
चिमय कोरे गको तुपुञ तना
बुन्दु गोलि दोरे चोलङ लेना।
सिन्धु धाटी रेको लड़इ तना
हो को दिकु कोगा लड़इ तना
हो को रपः रेको तुपञ तना
कोल-को चएं-चुर कोगा तुपुञ तना।
सर अः सर तेको तुपुञ तना,
बिर-जिलु को लेका गाको तुपुञ तना
तोराइ कापि तेको ममः तना
उरिः इ मेरोम लेका गाको ममः तना
हो को मयोम बोले लिंगि तना
सिन्धु धाटी रे मयोग लिंगि तना
कोल-को मयोम बोले हड़िन तना

हो रपः जएगा रे मयोम हड़िन तना।

दोला तेबु लेल जोमा गा
हो जातिम मयोम गे लिंगि तना
दोला तेबु चिने जोमा गा
कोल जातिम मयोम गे हड़िन तना।

उक्त तथ्यों के आलोक में कोल शब्द के संबंध में मेरा मत है कि "कोल -शब्द हो जाति के आदि पुरूष लुंकु की पौरूषता, सद्‌गुण सम्पन्न्ता, युद्ध कौशलता, दक्षता, ईमनदारिता, दयालुता, जातीय गुण की पवित्रता एवं प्राकृतिक गुण सम्पन्नता के रूप का प्रतीक है, जो हो-जाति आज भी कोल-शब्द के रूप में संजो कर रखा है।"

सिन्धु घाटी, हड़प्पा, मोहन-जो-दड़ो, आजोम गढ़, लरकाना, चान्हू दड़ो, इकरा, हिसार रोपड, लायल, सुरकातदा, आदि जगहों में आर्यो और कोलो के साथ हजारों वर्षों तक भीषण संग्राम करना पड़ा था। जिसका आर्य वौदिक साहित्य में आर्य-अर्थात् संग्राम के रूप में उल्लेख किया गया है। इससे हो-जाति की युद्ध-कौशलता तथा युद्ध-पौरूषता की झलक मिलती है।

गुलाम हिन्दुस्तान में कोल्हान एवं पोड़ाहाट पीड़ तथा सेरेंगसिया घाटी में हो-कोल और अंग्रेज-फौजों के साथ गुलारी युद्ध तथा भीषण संग्राम में, अग्रेंज फौजों को नाको-दम किया था। फलस्वरूप कोल्हान्-पोड़ाहाट पीड़ अंग्रेज सरकार के अधीन आशिंक रूप में रहा। अंग्रेज सरकार ने हो-जाति की युद्ध कौशलता को देखकर उसे 'लड़का-कोल' 'लरका-कोल' और 'लड़को-हो-कोल' की उपाधि की संज्ञा से विभुषित किया।

स्वतंत्र भारत में भी, झारखण्ड - आंदोलन की लड़ाई में हो-जाति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। खरसुवाँ गोली कांड, गुवा-गोली काण्ड, सेरेंगदा गोली काण्ड, गोइलकेरा गोली काण्ड, कुईड़ा गोली काण्ड ने तो अंग्रेज - सरकार द्वारा दी गई -'लड़का-कोल' की उपाधि को पुर्नजीवित किया।

आज हो जाति अपने को 'कोल' कहने में गर्व महसूस करते हैं।

=o=o=o=

3. हो आदिवासी की शारीरिक बनावट एवं स्वभाव

भारत के आग्नेय परिवार में 'हो' एक उप जाति है और आस्ट्रिक परिवार की मुण्डा-भाषाओं में 'हो' एक उपभाषा है। 'हो' भारतीय आदिम जाति का लोकप्रिय शब्द एक ही साथ दो अर्थों को लेता है।

(1) हो - 'हो' का शाब्दिक अर्थ है - मनुष्य, आदमी ।

(2) हो जाति - वह जाति, जो झारखण्ड प्रदेश के पश्चिमी सिंहभूम जिले के कोल्हान एवं पोड़ाहाट क्षेत्र के जंगल-पहाड़ों में मुख्य रूप से निवास करते हैं। इसके अलावे उड़िसा प्रदेश के मयुरभंझ, क्योंझर तथा बंगाल एवं आसाम प्रदेश में निवास करते हैं। हो आदिवासी हो-भाषा बोलते हैं।

(क) शारीरिक बनावट

'हो' आदिवासी सदा जंगल-पहाड़ों में निवास करने वाली जाति है। फलस्वरूप प्राकृतिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से 'हो' का शारीरिक बनावट अनोखा है।

गैर आदिवासी विद्वानों ने 'हो' के शारीरिक बनावट को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है।

'हो' के शारीरिक बनावट के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न मत दिये हैं- अतः इन्हे 'लड़का-हो' के रूप में भी जाने जाते हैं।''

(5) डॉ. राम कुमार तिवारी ने 'झारखण्ड की रूपरेखा' में लिखा है कि - 'मुण्डा-भुमिज और हो जनजातियों को 'कोल' की संज्ञा दी जाति है। इन तीनों में 'हो' को शारीरिक दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है। श्रेष्ट इसलिए भी कि वे, सच्चाई, ईमानदारी, सहृदयता तथा सहायक प्रवृति के लिए विख्यात रहे हैं।'

(6) डॉ. जियाउद्दीन अहमद ने, - 'बिहार के आदिवासी' पुस्तक में लिखा है कि - ''हो की शारीरिक स्थिति अच्छी नही है। इनका सीना गहरा, कंधा चौड़ा और स्वास्थ्य अच्छा नहीं होता है। साधारणतः ये लोग नाटे, काले और चिपटी नाक वाले होते हैं। इनकी आँखें काली और छोटी होती हैं । इन्हें मूँछ-दाढ़िया लगभग नहीं के बराबर होती है।''

भूगोल एवं वातावरण की दृष्टिकोण से 'हो' का अपनी अलग पहचान है। हो आदिवासी, जिस भू-खण्ड में निवास करते हैं वहाँ सूर्य की किरणें सीधी पड़ने तथा गर्मी अधिक पड़ने के कारण शारीरिक बनावट को प्रभावित करता है। फलस्वरूप 'हो' का शारीरिक बनावट अन्य आदिवासियों एवं गैर आदिवासियों में अन्तर का कारण है।

शारीरिक बनावट की दृष्टि से 'हो' काफी आकर्षक रूप के होते हैं पुरूष की औसत ऊँचाई 5 फीट 5 ईंच से 6 ईंच तक के होती है। महिला की औसत ऊँचाई 5 फीट 3 ईंच तक होती है।

(1) डॉ. ललिता प्रसाद विद्यार्थी ने बिहार के आदिवासी में लिखा है :-

"हो का कोई विशेष आकर्षक रूप नहीं है। उनका कद छोट नाक चिपटी और चमड़े का रंग काला होता है। उनकी आँखें छोटी पर काली होती है। दाढ़ी ओर मूँछे लुप्तप्राय ही रहती है। चिबुक संकीर्ण तथा ओष्ट मध्यमाकार होता है। उनके दाँत बड़े स्वच्छ एवं स्वस्थ्य होते हैं।"

(2) कोलोनल डाल्टन ने, सिंहभूम गजेटर्स में उल्लेख किया है कि -

"सिंहभूम के 'हो' मुण्डा, संथाली एवं अन्य कोलेरियन दक्षिण परगना एवं लोहरदगा जिला के भूमिज की अपेक्षा अधिक शारीरिक शक्ति के होते हैं। पुरूष की औसत ऊँचाई 5 फीट 6 ईंच होती है। महिला की औसत ऊँचाई 5 फीट 2 ईंच होती है। नवयुवती-लड़कियों की मूलतः विशेषतः इनकी लम्बी नाक सुन्दर चेहरे एवं कोमल ओंठ होते हैं।"

(3) कुंवर सिंह तिलारा ने - बिहार की जनजातियाँ पुस्तक में लिखा है -

"हो लोग सुन्दर नहीं कहे जा सकते। इनका कन्धा चौड़ा, सीना गहरा, रंग काला, कद नाटा होता है। इनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं होता। यह काली व छोटी आंखों वाले होते हैं। मूंछे तथा दाढ़ी कम होती है।"

(4) घनश्याम गागराई ने - 'परिचय आदिवासी हो समाज' पुस्तक में लिखा है कि-

'हो' सामुदाय के लोग बीर, बहादूर एवं लड़ाकू योद्धाओं के रूप में पहचान

रखते हैं। चमड़े का रंग सांवला होता है। उनकी आँखें छोटी, काली और काफी सुन्दर होती हैं। उनके बाल काले एवं लहरदार तथा घुँघराले दोनों होते हैं। दाढ़ी एवं मूँछे अल्प मात्रा में होते हैं दाँत बड़े मजबूत, स्वच्छ एवं स्वास्थ्य होते हैं। उनकी लम्बी व गोरी नाक सुन्दर होती है। सुन्दर एवं कोमल ओठ होते हैं। ये शारीरिक बनावट की दृष्टि से काफी ईष्ठ-पुष्ठ होते हैं।

वर्तमान परिवेश में 'हो' के शारीरिक बनावट

वर्तमान में हो आदिवासियों के निवास क्षेत्रों के जगंल-पहाड़ों के पेड़-पौधे के कट जाने से वातावरण में परिर्वतन आया है। दूसरी ओर औद्योगिकीरण एवं शहरीकरण तथा खनिजीकरण का प्रभाव भी क्षेत्र में पड़ा है। फलस्वरूप 'हो' के भौतिक सुख-सुविधा में वृद्धि हुई है। हो आदिवासियों के शैक्षणिक एंव बौद्धिकता में सुधार आया है। जिसके कारण खान-पान, रहन-सहन एंव स्वास्थ्य में सुधार आया है। फलस्वरूप उसके शारीरिक बनावट एवं स्वभाव में काफी परिर्वतन आया है।

"आज 'हो' के शारीरिक बनावट में विकास आया है। पुरूष और महिला के ऊँचाई में वृद्धि की झलक मिलती है। उसके काले चमड़े का रंग में गोरापन की ललिमा देखने को मिलता है। उसके गल में आधुनिकता का निखार देखने को मिलता है। दाढ़ी और मूंछ में परिर्वतन स्पष्ट देखने को मिलता है। उनकी नाक एवं ओठ की बनावट में भी सुधार आया है।"

आज आप 'हो' के शारीरिक बनावट एवं उसकी सुंदरता को देखकर यह नहीं कह सकते हैं कि ये सचमूच हो आदिवासी हैं, या गैर जाति के हैं।

'हो' के शारीरिक बनावट एवं सुन्दरता का हो मागे-गीत में प्रमाणिकता को दर्शाता है :-

होमोड़ो तम दो चोन्दोन दरू
मेड. मोचा कोमोल बाड़ा
ओकोन कोरेम जोनोम लेना निमिन सुन्दर दो ?
लेलो : तनम बंगाली को लेका,
हरा-मरां दिकु को लेका
ओकोन कोरेमो जोनोम लेना निमिन सुन्दर दो ?

अर्थ :-

चन्दन पेड़ के समान, तुम्हारा ये बदन
कमल फूल के समान, तुम्हारा ये चेहरा,
इतनी सुन्दर हो, कौन से देश में जन्मे हो।
बंगालियों की तरह दिख रहे हो
ऊँचाई दिकुओ की तरह
इतनी सुन्दर हो, कौन से देश में जन्मे हो।

स्वभाव

हो आदिवासी शांत, सरल, सुशील, ईमानदार, आज्ञाकारी और स्वंतत्र स्वभाव के होते हैं। हो जाति सदा स्वतंत्रता प्रिय रहा है, तथा किसी बाहरी व्यक्ति का जुल्म अथवा स्वाधीनता सहन नहीं करता है। यदि उनके स्वभाव एवं इच्छा के विरूद्ध कोई कार्रवाई की जाती है, तो वे क्रोध से आग बबूला होता है, और बिना सोचे - समझे प्रत्यक्ष रूप से तुरंन्त कार्रवाई का जवाब देना चाहता है।

हो जाति के लोग बाहरी लोगों (दिकुओं) के साथ रहना कतई पसन्द नहीं करते हैं। शायद इसी स्वभाव के कारण वह जंगलों में, पहाड़ों में तथा एकान्त एवं अपने जाति के झूण्डों के साथ रहना पसंद करता है। इसी मानसिकता के कारण आज भी हो जाति के लोगों में जंगल-पहाड़ों में रहने तथा नदी-झरनों के किनारे एकान्त रहने की प्रवृति है।

हो जाति के स्वभाव के बारे में विद्वानों ने विभिन्न तरह से अपना मत व्यक्त किया है :-

(1) हो जाति के स्वभाव के संबंध में डाल्टन ने उल्लेख किया है कि - 'सिंहभूम के कोल स्वभाव से ही युद्ध को पसन्द करने वाले होते लेकिन अपना देश छोड़ना और बेगार का काम करना, उन्हे बिल्कुल पसन्द नहीं होता है।

(2) प्रणव चन्द्र राय चौधरी ने बिहार के 1857 (छोटानागपुर एवं सथांल परगना) पुस्तक में, उल्लेख किया है कि "कोल्हान का अवशेष क्षेत्र काफी वर्षो तक अज्ञात ही रहा, क्योंकि हो लोगों ने किसी भी अजनबी का वहाँ नहीं बसने दिया। यहाँ तक की किसी को जाने-आने की भी पूरी छूट नहीं दी। जग्रनाथपूरी के यात्रियों को वर्षो तक इस क्षेत्र के रास्ते से जाने नहीं मिलने से काफी घूमकर लम्बी दूरी तय करनी पड़ती थी।"

(3) घनश्याम गागराई जी ने - 'परिचय आदिवासी हो समाज, पुस्तक में लिखा है कि- ''हो लोगों के पहनावा, चाल-ढाल, इत्यादि सभी में एकता पायी जाति है। ये साफ सुथरा रहना पसन्द करते हैं। घरो को तथा घर के आस-पास को भी साफ-सुथरा रखते हैं।

'हो' जाति के लोगों के संबंध में मेरा स्पष्ट मत है कि - ''हो आदिवासी शांत, सरल, सुशील, ईमानदार, एकान्त प्रिय और स्वतंत्र स्वभाव के होते हैं। प्राणों का बलिदान देकर अपनी पहचान, अस्तित्व की रक्षा, जल, जंगल एवं जमीन की रक्षा तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, परम्पारिक प्रजातांत्रिक-देशज शासक प्रणाली (मानकी-मुण्डा शासन प्रणाली) एवं अधिकारों की रक्षा करना उनकी जातीय विशेषता है।''

'हो' लोग बड़ी जिदी तथा क्रोधी स्वभाव के भी होते हैं। किसी का गलत शब्द सुन नहीं सकते हैं। गलत काम और गुलामी कभी बर्दाश्त नही कर सकते हैं। एक बार - 'कञ अः'' (नहीं करेंगे) या- ''तमिमें'' (पीटो) शब्द कहा देने पर वचनों का सदा अमल करते हैं।

जब-जब लोगों पर दमनात्मक कार्रवाई हुई है या उनके पहचान, अस्तित्व, ईज्जत तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, जल, जंगल एवं जमीन तथा उनके अधिकारों पर हस्तक्षेप किया गया है। 'हो' जाति के लोगों ने हमेशा विद्रोह किया है, क्रांति किया है। स्वतंत्रता के बाद भी, झारखण्ड आन्दोलन एवं दमनात्मक कार्रवाई के विरूद्ध, - राज खरसावाँ गोली-काण्ड, सेरेगद गोली-काण्ड, गोइलकेरा गोली काण्ड, कुईड़ा गोली काण्ड, गुआ गोली काण्ड, बीदर नाह नामक हत्या कण्डा आदि हो आदिवासियों पर दमनातमक कार्रवाई का परिणाम रहा है। शायद इसलिए -'कोल्हान पीड़ाहाट को विद्रोह-भूमि एवं क्रांति-भूमि'' कहा गया है।

शायद 'हो' लोगों की इस विद्रोह, क्रांति एवं लड़ाकू स्वभाव के कारण ही लगभग दो सौ वर्षो के बाद अंग्रेज 'हो' लोगों के प्रदेश में प्रवेश कर सके तथा आंशिक रूप में 'हो' लोगों पर शासन कर सका, लेकिन कभी अंग्रेजों एवं राजाओं की अधीनता स्वीकार नही की है।

=o=o=o=

4. सिन्दु-दिसुम की मूल जाति की प्राचीनता : एक परिचय

(1) परिचय

प्राचीन काल में आदिवासी समूचे भारत में फैले हुए थे। उनका अपना लिखित इतिहास था। विकसित साहित्य तथा वैज्ञानिक लिपि थी। समृद्ध संस्कृति एवं सभ्यता थी। देशज, आदिम शासन प्रणाली था। अपना धर्म एवं धार्मिक ग्रन्थ था। खेती बड़ी तथा पशुपालन उन्नत किस्म की थी। यहां की अर्थ व्यवस्था काफी उन्नत थी। इसीलिए भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री, पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था -"सच्ची और इतिहास सिद्ध बात तो यह है कि भारत के प्राचीन आदिवासी पूर्ण सभ्य थे और ऐसे महान् और आश्चर्यजनक सभ्यता के जन्मदाता थे, जिसकी सभ्यता की तुलना सारे संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिलती है।"

भारत में आर्यो के आने से पहले अनार्यो जो यहाँ की प्राचीन मूल जातियाँ (आदिवासी) - हो, मुण्डा, संथाल, बिरहोर, खड़िया, उरांव निवास करते थे। उनका अपना देश था। अपना छोटा-छोटा राज्य था। ये मूल जातियाँ अपने देश और राज्यों को अलग-अलग नामों से संबोधित करते थे। 'हो' आदिम जाति अपने देश को - 'सिदु-दिसुम' के नाम से सम्बोधित करते थे। इस 'सिदु-दिसुम' के अन्तर्गत चौरासी पीड़ (चौरासी राज्य) तथा ईक्कीस पीड़ (ईक्कीस प्रदेश) था। सिदु-दिसुम के अन्तर्गत - सिंदु घाटी, हो रप्पः मेंजो दइ हो चान्दु दई हो, लड़ई केना, आकाड़ा, हिसिर, रोपड़ा, मान्दर, सुरको दः , लो तला इत्यादि राज्य एवं प्रदेश थे।

जब सिदु-दिसुम में आर्यो के खानाबदोश कबीले उत्तर पश्चिमी भारत के दर्रों के रास्ते सिन्धु गाटी (सिन्धु नदी) के ऊपरी तराइयों आकर बसे, तब, आर्यो ने सिदु-दिसुम को - 'सिन्धु देश' "सिन्ध-देश" एवं "सन्धवौव-देश" आदि कहा।

सिदु दिसुम के नामकरण के सम्बन्ध में 'हो' लोगों की सोच है कि 'सिदु हो' सिदु-दिसुम का राजा था। वह वीर था। दिसुम का शाब्दिक अर्थ है - देश। आज भी सिंहभूम के हो जाति में "सिदु" गोत्र पाया जाता है तथा अपना नाम सिदु, सिदु हो, सिन्दु हो रखने की परम्परा है।

(2) सिदु-दिसुम के 'हो'

सिदु-दिसुम या सिदु की दिसुम में 'हो' (हो, मुण्डा, संथाल) जाति के लोगों हो, होड़ों, होड़ के नाम से जाना जाता था। हो लोककथा तथा हो लोगों के अनुसार - हो, मुण्डा, संथाल एक माँ-बाप के बेटे थे। एक खून एवं एक वंशज के आदमी थे। इनके चमड़े का रंग काला था, बाल घुंघराले थे।

सृष्टि काल की बात है लुकु हड़म, लुकुमि बुढ़ि (पिलचु हड़म-पिलचु-बुढ़ि, लुटुकम-हड़म, लुकुटम-बुढ़ि - हो, संथाल एवं मुण्डा नाम है) सृष्टिकर्ता, जिसके तीन बेटे थे - हो, होड़ एवं होड़ो। जो सम्पूर्ण सिदु दिसुम में फैले हुए थे।

जब सिदु दिसुम में आर्यो का आगमन हुआ, तो यहाँ पूर्व से रह रहे प्राचीन मूल जाति (अनार्य या आदिवासी) जिसे अनार्य कहा जाता था, से आर्यो का संघर्ष हुआ। मूल जाति युद्ध में हार गयी और वे सिदु दिसुम से घर-द्वार खेती-बाड़ी धन-सम्पति छोड़ कर भाग गये। सिदु-दिसुम से भागने के क्रम में स्थान परिवर्तन, समय एवं परिस्थिति वश विशालतम हो परिवार का विभाजन (हो, होड़ो एवं होड़) शनैः-शनैः शुरू हुआ। मूलतः यह विभाजन 'जएर-कन्डा' (झारखण्ड) क्षेत्र के भू भाग में आकर हुआ ये इस भू-भाग के विभिन्न क्षेत्रों में फैल गये तथा स्थायी रूप से रहने लगे। आज यहाँ बड़ा भाई होड़ो को मुण्डा, मंझले भाई होड़ को संथाल और छोटा भाई हों को हो नाम से जाना जाता है। इसके "एंगा हयम" (मातृभाषा) में भी अल्प भिन्नता आ गयी है। इस झारखण्ड भू-भाग के विशालतम हो, होड़ एवं होड़ो परिवार के विभाजित परिवार मुण्डा उपजाति के बोली को मुण्डारी, संथाल उपजाति के बोली को 'संथाली' और हो उपजाति के बोली को 'हो' कहा जाता है। इसके बावजूद आज भी इन उपजातियों के भाषिक समानता सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक एवं रंग की समाानता सिदु-दिसुम की हो, जाति परिवार की प्राचीनतम मूल प्रकृति एवं श्रृखंला को याद दिलाता है।

(3) सिदु-दिसुम के प्राचीन राज्य

प्राचीन काल में 'सिदु दिसुम' ऑस्ट्रिक भाषा परिवार का एक विशाल प्रजातान्त्रिक देश था, राष्ट्र था। हो लोककथा लोकगीतों के अनुसार - 'सिदु-दिसुम' में चौरासी पीड़ (चौरासी राज्य) तथा ईक्कीस पीड़ (ईकक्रीस प्रदेश) में बांटा हुआ था। इन राजों एवं नामों का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

सिदु दिसुम से मूल जातियों के भाग जाने के बाद आर्यो ने आदिम जातियों के नामित राज्यों, प्रदेशों, स्थानों एवं वस्तुओं का नाम जो मूल प्राचीन जाति (आदिवासी) के मातृभाषा के शब्दों को शुद्ध-शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाने के कारण सिदु गाटी को "सिन्धु घाटी या घाट" हो रप्पः को "हड़प्प" तथा मेंजो इद हो को "मोहन जो-दड़ों" उच्चारण करने लगे, जो आज भी इस नाम से ही जाना जाता है।

(4) लिपि

सिन्धु घाटी (सिन्दु गाटी) के सिन्धु लिपि के लगभग 400 चिन्ह ज्ञात हैं। ये सब जगह छोटे आकार में हैं। लिखावट सामान्यतः बाई से दाईं ओर है। लेखन प्रणाली साधारणतः अक्षर सूचक मानी गई है।

भारत की प्राचीनतम सभ्यता-सिन्धु घाटी, मोहन जोदड़ों एवं हड़प्पा की लिपि, जो विकसित लिपि थी आज तक पढ़ा नहीं जा सका है।

मुण्डा परिवार की भाषाएँ पृथ्वी की प्राचीनतम भाषाओं में एक है। हो मुण्डा एवं संथाल जाति के लोगों की मान्यता है कि सिन्धु घाटी (सिन्धु गाटों), मोहन जोदड़ो (मेंजो दइ हो) एवं हड़प्पा (हो रप्पः) की प्राचीनतम लिपि उनके पूर्वजों की लिपि रही है, जो चौरासी पीड़ी तथा ईक्कीस पीड़ी में फैला हुआ था। जैसा के 'हो' लोकगीत से प्रमाणित होता है :-

सिरिमा रेमा लिपि नोते रेमा
गोले तेगे लिपिम नायुम मेया
सिरिमा रेमा लिपि नोते रेमा
सि.उड़ि तेगे लिपि नायुम मेया।

गोले तेगे लिपिञ नायुम मेया
नेगञ अपुञ लेकञ अदा मेंया
सि-उड़ि तेगे लिपिञ नायुम मेया
उन्डिञ बोकोञ लेकञ अदा मेया।

नेगञ अपुञ लेकञ अदा मेया
सिदु-दिसुम मेरेञ नेलड मेया
उन्डिञ - बोकोञ लेकञ अदा मेया
हो रप्पः रइज एरेञ चिनड में आ।

स्व. लाको बोदरा एवं स्व. पंडित रघुनाथ मुर्मू जो "बारंड् चिति" एवं "ओल् चिकि" के आविष्कारक हैं इन दोनों विद्वानों ने दावा किया है कि सिदु दिसुम के सिदु गाटो (सिन्धु घाटी की लिपि- हो, एवं संथालो के पूर्वजों की लिपि है इसे "बारंड्. चिति" एवं "ओलचिकि" में अंकित लिपि, सिदु दिसुम के मेजोदइ, सिदु गाटी, एवं हो रप्पः की प्राचीनतम लिपि से मिलता है। इस लिपि से सिन्धु घाटी, मोहन जो दड़ो तथा हड़प्पा की प्राचीनतम आदिम लिपि को पढ़ा जा सकता है तथा लिखा जा सकता है।

हो एवं संथाल गांव के दिउरि (पहान), देंवड़ा एवं नाइक लोगों की सोच है कि विभिन्न पर्व त्योहारों, पूजा-विधानों में होलोङ (पवित्र चावल चूर्ण) एवं ससङ गुन्डा (पवित्र हल्दी चूर्ण) जो बोंगा - जाएगा' 'जाहेरथान' (पूजा स्थल) पर के रेखांकित चिन्ह तथा घरों पर की जानेवाली नक्काशी की आकृतियाँ सिन्धु घाटी एवं हड़प्पा के लिपि का प्रति रूप है। इस आकृति एवं चिन्हों में अनेक पूजित बोंगा-बुरू (देवी देवता), उनके अस्त्र-शस्त्र उनके आभुषण, पशु-पक्षी, पेंड़-पौधे, कृषि एव घरेलु उपस्करों से सम्बन्धित है।

भाषा विज्ञान से भी यह स्पष्ट होता है कि 4500 वर्ष से भी पहले मुण्डा (हो, मुण्डा, संथाल, बिर हो) जाति के लोग उत्तर पश्चिमी के लरकाना व सिन्ध (अब पाकिस्तान) में स्थित मोहन जोदड़ों, हड़प्पा इचः गोड. चम्पा गोड़ एवंचिरू नगर में उनकी भाषा लिपि, साहित्य तथा संस्कृति काफी विकसित थी।

एक अंग्रेज विद्वान ने ठीक ही लिखा है कि - 'मुण्डा भाषा विश्व-भाषाओं की मूल है।'

इस तरह हम कह सकते हैं कि "हो-मुण्डा भाषा परिवार की भाषा और संस्कृति जितनी प्राचीन है, इतिहास भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जहाँ आर्यो का सिन्धु सभ्यता से भाषा, लिपि, साहित्य और संस्कृति के विकास का इतिहास प्रारम्भ होता है, वहीं से अनार्यो (प्राचीन मूल जाति - हो, मुण्डा, संथाल) की बुनियादी सभ्यता एवं इतिहास समाप्त होता है।"

(5) खेतीबाड़ी एवं पशुपालन

सिदु दिसुम के मूल प्राचनी जातियों का मुख्य पेशा खेतीबाड़ी एवं पशुपालन था। वे लोग धान, गेहुँ, मकई गंगई, चना मटर सरसो, सुरगुजा एवं तिसी आदि की खेती

करते थे। गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेंड़ा, सुअर आदि जानवरों को पालते थे। बैल एवं भैंस से खेत जोतते थे।

यहाँ के जंगलों में चिते, गैंडे, रीछ, गीदड़, भेड़िया, हिरण, बारहसिंगे, साम्भर, हाथी, सूअर और तरह-तरह के पशु- पक्षियाँ पायी जाती थी। इनमें हिरण, साम्भर बकरा, सूअर एवं पक्षियो के मांस को खाते थे। सिदु दिसुम के हो लोग गाय, बैल, भैंस, भेंड़ा तथा मुर्गा-मुर्गी के मांस खाते थे। पानी में रहने वाले कछुआ एवं मछली के मांस भी खाते थे।

(6) पूजा-पाठ

सिदु दिसुम के प्राचीन आदिम जाति मूल रूप से प्रकृति के पुजारी थे। जंगल, पहाड़, नदी, झरना, जल के बोंगा (देवी देवताओं) का पूजा करते थे धरती की भी पूजा करते थे। गांव का दिउरि, पहान होता था। जएर, देसाउलि, आदि पूजा स्थल था। पूर्वजों के आत्माओं की धार्मिक अनुश्ठानों में संस्कारों तथा विशेष अवसरों पर याद करने का रिवाज था।

यहाँ के मूल जाति नारी लिंग की पूजा करते थे। इन लोगों का विश्वास रहा है कि - "नारी शक्ति ही सारी सृष्टि का मूल है।" सिंहभूम के 'हो' जाति का मागे-पर्व नारी लिंग पूजा का प्रतिरूप है। जो आज भी हो लोग धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मनाते हैं।

(7) प्रेतवाद में विश्वास

यहाँ के प्राचीन आदिम जाति आदिम धार्मिक भावना तथा प्रेतवाद में भी विश्वास करते थे तथा पुनर्जन्म पर भी विश्वास करते थे।

(8) शव दफनाना

सिदु गाटो एवं हो रप्पः के मूल निवासियों में शव को दफनाने का सामाजिक रिवाज प्रचलित था। जब आर्यो और मूल जातियों में भीषण युद्ध हुआ तो हजारो-हजार लाशों का ढेर हो गया था, तो सामूहिक रूप से शवों का कब्र में दफनाया गया था। ऐसे तो मृत व्यक्ति को अकेला ही दफनाने का रिवाज था।

सिदु गाटो एवं हो रप्पः की भाँति ही सिंहभूम के हो जाति में शव को दफनाने का

प्राचीनतम सामाजिक रिवाज प्रचलित है। शव के साथ (शव के व्यक्तिगत सामानों) आभुषण, अस्त्र-शास्त्र वर्तन, चावल-दाल, रूपया पैसा, कपड़ा तथा मटिया में हड़िया आदि सामानों को भी गाड़ा जाता है।

(9) शव-दाह संस्कार

सिदु गाटो, मेंजो दइ हो, हो रप्पः के प्राचीन मूल जातियों में शव दाह संस्कार करने का सामाजिक रिवाज नही था। आर्यो एवं मूल जातियों के साथ भीषण युद्ध में हजारों लाखों की तायदाद में मूल जातियों का नर संहार हुआ। ऐसी स्थिति में हजारों-लाखों शवों का दफनाना सम्भव नहीं रहा होगा तथा सामाजिक रिवाज (शव दफनाना) के विरूद्ध लाशों का दाह संस्कार करना पड़ा। आज भी यह परम्परा यादगार के रूप में 'हो' जाति में जीवित है। हो जाति में परिवार तथा समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के शव को दाह संस्कार किये जाने की रिवाज है। इस तरह हो जाति में शव को दफनाने तथा दाह संस्कार करने का दोनों रिवाज प्रचलित है।

(10) प्राचीन मूल जाति और आर्यो में संघर्ष

जिस समय आर्यो के खानाबदोश कबीले उत्तर-पश्चिमी भारत के दारो के रास्ते सिदु-गाटो (सिन्ध-नदी) की ऊपरी तराइयों में आकर बसे। 'सिदु-दिसुम' (भारत) में अपनी सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के पूर्व आर्यो को प्राचीन मूल जाति (अनार्यो) से भीषण संग्राम करना पड़ा था। आर्य काफी बलिष्ठ और चतुर थे। ये इर्श्यालु एवं डकैत प्रवृति के थे। इनके पास लड़ाई करने का अस्त्र-शस्त्र भी था। प्राचीन मूल जाति को आर्यो की मानसिकता तथा शक्ति का पूर्ण आभास था। जैसा की हो, लोक गीतों में आज भी इसका स्पष्ट झलक मिलता है :-

नम सेनते नोरारे चितिर
सिसा गुलि तड़ा को चितिरि
नम बिरड डहरेन रे नसाकल
जोड़ा बुन्दु तड़ा को नसाकल।
चिरगल ते सेनोः मेरे चितिरि
सिसा गुलि तड़ा को चितिरि
नोसिअर ते बिरड् मेरे नसाकल

जोड़ा बुन्दु तड़ा को नसाकल।

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य आर्य-अनार्य संग्राम के वर्णनों से परिपूर्ण है। यहाँ के मूल जाति तथा आर्यो के साथ हजरों वर्ष तक घनघोर लड़ाई हुई। 'हो' लोक गीत में मूल जाति और आर्यो के भीषण युद्ध का वर्णन मिलता है :-

ईकाइस पिड़ दी लो तना मएनो जी
नोंको रेलं तइना मएनो जो
चौरासी बादि दो बल तना मएनो जी
चिमए रेलं गुसामा मएनो जी?
तरा तेदो लो तना मएनो जी
तरा तेलं नति अ मएनो जी
तरा तेदो बल तना मएनो जी
तरा तेलं पोसाना मएनो जी।
तरा तेलं नतिङ अ मएनो जी
क रेलं बोरोना मएनो जी
तरा तेलं पोसाना मएनो जी
क रेलं उसाना मएनों जी।

इस लड़ाई में मूल निवासी हार गये। विजयी आर्यो ने अपने साहित्य में विजित मूल जाति अनार्यो को दास, दस्यु, राक्षस, कृष्ण, पिशाच, सुअर एवं कोल इत्यादि विभिन्न नामों से सम्बोधित कर उन्हें हेय दृष्टि से देखने की एक परम्परा स्थापित कर दी। इस संघर्ष में बड़ा खून-खराबा हुआ। वैदिक-साहित्य के युद्ध-भूमि में 50,000 काली चमड़ी वाले शत्रुओं के घात तथा 30,000 दासों की हत्या का उल्लेख है।

आर्यो और प्राचीन मूल जाति के पारस्परिक संग्राम ने विजयी और विजित जिन दो वर्गो का निर्माण हुआ था, उसमें राजनैतिक, समाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक, अधार्मिक, नैतिक एवं आर्थिक भिन्नता के साथ-साथ प्रजातीय और शारीरिक भिन्नता भी वर्तमान थी। सर्वाधिक उल्लेखनीय भिन्नता रंग की थी। आर्य गौर वर्ण के थे और मूल जाति (अनार्य) कृष्ण वर्ण के थे।

(11) खोज

सर जॉन मार्शल व श्री राखल दास बैनर्जी के नेतृत्व में 1921 में सिन्ध के लरकाना जिले और पश्चिमी पंजाब के माण्टगोमरी जिले (अब दोनों ही पाकिस्तान में) है के पुरातात्विक खुदाइयों से दो अत्यंत प्राचीन नगरों का पता चला। ये हैं- (1) हड़प्पा (हो रप्पः) ओर मोहन जो दड़ों (मेंजो दइ हो)। इस खोज से एक अति प्राचीन सभ्यता का भी पता चला। यह भारत का ही नही, बल्कि विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यताओं में एक है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार हड़प्पा और मोहन जोदड़ों की सभ्यता ई. पू. 2300 से ई. पू. 1500 के आसपास की है। इस सभ्यता को 'सिन्धु घाटी' (सिदु गाटो) की सभ्यता कहा जाता है। यह एक विकसित नागरीय सभ्यता मानी जाती है।

चाइल्ड ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि सिन्धु नदी तट की सभ्यता सुमेरियो की सभ्यता से पुरानी है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत की पहली और प्राचीन सभ्यता को प्राचीन मूल जातियों, अनार्यो ने संवारा है जिसमें द्रविड़ लोगों का सहयोग रहा है।

ऋगवेद में भी इस बात की पुष्टि होती है, कि आर्य पूर्व निवासियों प्राचीन मूल जातियों के पाषाण निर्मित सैकड़ों नगर तथा उनके मणियुक्त स्वर्णाभूषण के हैं।

(12) सिदु-दिसुम के इतिहास एवं मूल आदिम नामों का पुनर्मूल्यांकन

सिदु दिसुम के सिदु गाटो, हो रप्पः एवं मेंजो दई हो के इतिहास का पुर्नमुल्यांकन करने से तथा वहाँ के मूल प्राचीन जातियों के बोली, शब्दों एंव भाषा के आधार पर विश्लेषण किया जाय तो वहाँ के स्थानों, व्यक्तियों एवं वस्तुओं का नाम झारखण्ड क्षेत्र के - हो, मुण्डा, संथाल, हो, खड़िया उराँव से हु-बहू मिलेगा। हाँ, आर्यो के आने के बाद तथा वहाँ से प्राचीन मूल जातियों के भाग जाने से मूल नामों में अपभ्रंश-शब्द आ गया है। ऐसा इसलिए कि आर्यो द्वारा आदिम जातियों के शब्दों का उच्चारण नहीं कर पाना है।

यदि सिदु दिसुम के इतिहास एवं मूल आदिम नामों का पूर्नमूल्यांकन किया जाए तो वास्तविक स्थिति सामने आयेगा । जैसे :-

स्थानों का नाम

हिन्दी में	हो में
सिन्धु घाटी -	सिदु गाटो
मोहन जो दड़ो -	मेंजो दइ हो
हड़प्पा -	हो रप्पः
आजोमगढ़ -	आजोम गड़ा
लरकाना -	लड़इ केना
चान्हु दड़ी -	चान्दु दइ हो
हकरा -	अकाड़ा
हिसार-	हिसिर
रोपड़-	रो पड़ा
मांदा-	मान्दा
सुरकोतदा -	सुरको दः
लोथल -	लो तला

(13) सिदु-दिसुम के मूल जाति का झारखण्ड क्षेत्र में आगमन

सिदु दिसुम के हो, होड़ एवं होड़ो जाति परिवार के 'हो' सिदु गाटो, हो रप्पः, मेजो दइ हो, लड़ इकेना, चान्दु दइ हो, हिसिर खुरको दः, रो-पड़ा मन्दा, लो तला, अकाड़ा इत्यादि क्षेत्रों में आर्यो के साथ लड़ाई में हारकर गंगा तथा सिन्धु नदी के ऊपरी मैदानी इलाकों में भाग कर अपनी सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, एवं प्राकृतिक स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए सिदु-दिसुम तथा सिदु दिसुम के जमीन, जयदाद, धन-दौलत, मकान, लिपि, साहित्य, कला छोड़कर बिड्. दोयाचल (बिन्ध्याचल) अरातड़िः (अरावली) सतपुड़ा, महादेव, आदि पर्वतों की शरण ली। कालक्रम में भागते हुए झारखण्ड प्रदेश में आकर स्थायी रूप से बसे।

गौरवशाली हो परिवार के ''हो जाति'' अति प्राचीन काल से आर्यो द्वारा विभिन्न जगहों से भगाये जाने पर लगभग 600 ई. पू. झारखण्ड वन प्रदेश में आये और झारखण्ड वन प्रदेश के 'कोल्हान-पोड़ाहाट' में स्थायी रूप से बस गये और अपनी खुंटकटी भू व्यवस्था के साथ समतावादी समाज और परम्परिक देशज गणतांत्रिक शासन प्रणाली (मानकी मुण्डा प्रणती) का विकास किया और अपने को जातीय स्वभाव के अनुरूप स्वतन्त्रता पूर्वक रहने लगे।

(14) हो दिसुम मे हो लोगो का प्रवेश

"हो" दिसुम को सिंहभुमि या सिंहभूम के नाम से जाना जाता है। हो दिसुम में हो लोगो का प्रवेश कब हुआ इसका समय ठीक-ठीक आंका नहीं जा सकता है। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि 600 ई. पू. झारखण्ड वन प्रदेश में आगमन के कुछ वर्षो बाद ही 'हो' दिसुम में प्रवेश किया होगा।

हो लोग, हो दिसुम में दो क्षेत्रों में प्रवेश किया। हो लोगो का एक समूह राँची के पश्चिमी भाग एवं पश्चिमी दक्षिणी भाग के क्षेत्र से तथा दूसरा समूह रांची के पूर्वी भाग एवं पूर्वी-दक्षिणी भाग के क्षेत्र होकर बंगाल को छूते हुए प्रवेश किया तथा प्रवेश कर ये लोग पूर्व एवं दक्षिण की ओर और पश्चिमी-दक्षिण की ओर फैलने लगे।

भूइयाँ जाति के लोगों को परास्त कर वास करने का उल्लेख मिलता है। जहाँ आज 'हो' लोग रह रहे है, उस भू-भाग को - 'हो दिसुम' 'सिङ्. दिसुम' 'कोल दिसुम' एवं 'जएरा दिसुम' की संज्ञा से सम्बोधित करते हैं। हो-दिसुम के हो लोग जो 'कोल्हान-परगना' में रहते हैं वे अपने को 'कोल्हान पीड़' का तथा जो लोग 'पोड़ाहाट परगना' में रहते हैं वे अपने को 'पोड़ाहाट पीड़''के निवासी कहते हैं।

(15) दिकु के प्रति हो जाति की धारणा

'हो' लोग अपने को सिदु-दिसुम (सिन्ध देश) का प्राचीन मूल आदिम जाति का वंशज मानते हैं। इनके पूर्वजों को आर्यो ने लड़ाई में हराकर सिन्धु देश से भगाया था। शायद इस मानसिकता के कारण हस्तक्षेप उन्हें कतई पसंद नहीं है। हो दिसुम के हो लोग बाहर से आये बाहरी लोगों (व्यापारी, ठेकेदार, सरकारी सेवक एवं बाहरी रैयतों) को 'आर्य' न कहकर 'दिकु' शब्द से सम्बोधित करते हैं। दिकु का शाब्दिक है - "दि-दिसुम यानि देश राष्ट्र। कु-कुम्बू यानि चोर, डकैत। देश या राष्ट्र को चोरी करने वाला लुटने वाला चोर या डकैत।" 'हो' लोगो के इस मानसिकता व धारणा के कारण ही- 1837 तक कोल्हान् का आन्तरिक क्षेत्र अशांत ही रहा क्योंकि हो' लोगो ने किसी अजनबी को वहाँ नही बसने दिया। यहाँ तक की किसी को जाने आने की भी पूरी छूट नही दी। जगन्नाथपुरी के यात्रियों को वर्षो तक इस क्षेत्र के रास्ते से जाने की अनुमति नहीं मिलने से काफी घूमकर लम्बी दूरी तय करनी पड़ती थी।

=o=o=o=

5. मानकी-मुण्डा प्रशासन की रूपरेखा : संक्षिप्त परिचय

(कोल्हान-पोड़ाहाट)

सामान्य परिचय – मानकी-मुण्डा प्रशासन 'हो' जनजातियों का आदि शासन प्रणाली है। यह प्रशासन मूलतः सामाजिक रीति-रिवाजों पर आधारित है। जिसे 'हो' जनजातियों ने सदियों से हिफाजत कर रखा है।

कोल्हान-पोड़ाहाट पश्चिमी सिंहभूम जिले का जनजातीय इलाका है, जो सदा से स्वतंत्र गणराज्य रहता आया है। यहाँ 'हो' आदिवासियों की बहुलता है। यहाँ की विशिष्ट परम्पराओं ओर परिस्थितियों को ध्यान में रखकर थामस बिलकिंसन ने डेढ़ सौ साल पहले ग्रामीण प्रशासन वाली- देशज मानकी-मुण्डा प्रणाली को अपनाया।

विलकिंसन्स-रूल्स -ब्रिटिश कौंसिल के सदस्य की हैसियत से कौंसिल के गवर्नर जेनरल ने बंगाल अधिनियम संख्या - 13 सन् 1833 पारित किया, इसलिये यह अधिनियम के अनुसार विलकिनसन्स रूल्स बना। इस रूल्स के द्वारा सामाजिक रीति-रिवाज, जो कानून कहा जाता, मान्यता दी गयी।

बंगाल अधिनियम संख्या -13 सन् 1833 के अनुसार प्रारंभ हुआ, उसी के अनुसार कोल्हान् के जनजातीय सरदारों (मानकी मुण्डा) के साथ, अपने एजेन्ट के माध्यम से सुलहनामा किया। इन्होंने सरदारों को सन् 1833 को हुकुमनामा दिया तभी से इनकी 'मानकी-मुण्डा' के अधिकारों को प्रयोग करने का संवैधानिक हक प्राप्त हुआ, तब से अबतक संवैधाानिक रूप से 'मानकी-मुण्डा' प्रशासन चलता आ रहा है।

हुकूकनामाः एक संविधान – हुकूकनामा में मानकी-मुण्डा के काम, कर्तव्य एवं अधिकारों का हक दर्ज है। यह एक संविधान है। जहाँ तक हो, जनजातियों का मानकी-मुण्डा प्रशासन का सम्बन्ध है, हुकूकनामा में निहित है, जो प्रचलित प्राकृतिक आचार-विचार, रीति-रिवाज के रूप में मौजूद है जिन्हें अदालतें कानून के रूप में स्वीकार करती हैं।

मानकी – मानकी अपने इलाके का प्रशासकीय प्रधान होता है। वह अपने इलाके का प्रतिनिधि भी है। इस नाते इलाके के रीति-रिवाज, आचार-विचार, धर्म-कर्म, भले बुरे आदि के लिये सिद्धांतः उतरदायी भी वही होता है।

सामान्यतः मानकी इलाके के जनतंत्रात्मक शासन का प्रधान है। इस तरह मानकी अपने इलाके का कार्यपालिका, विधान पालिका, न्यायपालिका का सर्वोच्च है।

मुण्डा– मुण्डा, गाँव (मौजा) का प्रशासकीय प्रधान हैं, वह अपने मौजा का सभापति एवं प्रतिनिधि भी है। इस नाते अपने गाँव वालों की सामाजिक रीति-रिवाज, आचार-विचार, धर्म-कर्म, भले-बुरे आदि के लिए सिद्धांत उतरदायी भी वही है।

डाकुआ –डाकुआ गाँव का सन्देशवाहक तथा मानकी-मुण्डा का पुलिस एवं सन्देशवाहक है। गाँव की घटना की सूचना मुण्डा को देना तथा गाँव वालो को किसी महत्वपूर्ण बात, घटना की सूचना देना, उसके प्रमुख काम है।

कोल्हान अधीक्षक – सरकारी स्तर पर कोल्हान्-पोड़ाहाट का प्रशासन एक विशेष अधिकारी चलाता है, जिसे कोल्हान् अधीक्षक (कोल्हान् सुपरिटेडेंट) कहते हैं और जिसे उनका निजी अधिकारी मदद करता है।

कोल्हान् अधीक्षक का पद मानकी मुण्डा प्रशासन का शीर्षस्थ पद है, जो मानकी-मुण्डा के सभी काम एवं अधिकारों का निरीक्षण तथा निपटारा करता है, जिसमें अन्तिम निर्णय उपायुक्त महोदय का होता है।

उपायुक्त – मानकी-मुण्डा तथा कोल्हान् अधीक्षक, उपायुक्त के प्रशासनिक नियंत्रण में रहते हैं। कोल्हान्-पोड़ाहाट की समूचे 'देशज मानकी मुण्डारी प्रणाली' इसी नियंत्रण की आवधारणा पर निर्भर है।

मानकी मुण्डा की कार्यकाल – मानकी-मुण्डा का पद वंश परंपरागत एवं कुर्सीनामागत है। मानकी व मुण्डा अपने पद ग्रहण करने की तिथि से जीवनपर्यन्त बने रहते हैं, बशर्ते जब तक उसमें योग्यता रहती है तथा अपने इलाके व मौजा के

प्रजा को तकलीफ नहीं देता और हुकुकनामा के अनुसार कार्य करता है।

वेतन पाने का हक नहीं – मानकी मुण्डा को वेतन पाने का कोई मौलिक अधिकर नही है, चुँकि मानकी मुण्डा का पद परम्परागत तथा वंशानुगत है। अतः पद अवैतनिक है।

(क) अनुशंसा प्राप्त करने के सम्बन्ध में

आयुक्त का कार्यालय सिहंभूम, चाईबासा (राजस्व शाखा) पत्रांक 4910/ग, दिनांक 28–11–1983 के द्वारा – (1) जाति प्रणाम पत्र (2) नामांतरण (3) आय प्रमाण पत्र (4) आवासीय प्रमाण पत्र आदि मामलो पर मानकी एवं मुण्डाओं से अनुशंसा प्राप्त कर मामलों का निष्पादन किया जाना है।

वंशानुगत : कुर्सीनामा – 'मानकी मुण्डा' का पद वंश परम्परागत है, जब तक उसमें योग्यता रहती है तथा हुकूकनामा के अनुसार कार्य करते हैं।

यह एक खानदान में चला आता है। कुर्सीनामें के मुताबिक जो हकदार होता है, उसी को यह जगह मिलती है या खानदान का कोई एक खास लायक आदमी इस काम के लिए चुना जाता है।

यद्यपि मानकी मुण्डा का पद वंशानुगत-कुर्सीनामा के अनुसार साबिक जेष्ठ पुत्र पद के अधिकारी होते हैं, फिर भी इसके चयन में इलाके के मानकी खानदान के आदमी तथा ग्रामीण जनता की उपस्थिति तथा सहभागिता से चयन किया जाता है।

पीड़ – मानकी मुण्डा प्रशासन की दृष्टि से इलाके, गाँव (मौजा) को मिलाकर, जिसमें 20 से 50 गाँव तक भी हो सकता है। मानकी-पीड़ (इलाके) का प्रधान प्रशासक तथा मुण्डा (मौजा) के प्रधान प्रशासक होते हैं।

कोल्हान पोड़ाहाट के कुछ पीड़ों का नाम

1. लालगढ़पीड़	2. आंवला पीड़	3. थाइ पीड़
4. बड़ पीड़	5. वन्तिरिया पीड़	6. कोटगढ़ पीड़
7. रेंगड़ा पीड़	8. लाटुवा पीड़	9. कुलडीहा पीड़
10. गुमड़ा पीड़	11. चाड़ाय पीड़	12. ताड़ पीड़
13. गोइलकेरा पीड़	14. टुड़का पीड़	15. हुटुटुआ पीड़

16. कैरम पीड़ 17. पोड़ाहाट पीड़ 18.आनन्दपुर पीड़
19. बरकेला पीड़ 20. आयोध्या पीड़ 21. चैनपुर पीड़
22. सिदिउ लोटा पीड़ 23. गापीनाथपुर पीड़।

मानकी मुण्डा प्रशासन प्रणाली के प्रति हो जनजाति का स्वभाव– मानकी–मुण्डा प्रशासन हो–जनजातियों का आदि पारम्परिक जातीय शासन प्रणाली है। हो–जनजाति हमेशा स्वतंत्र रहा तथा स्वतंत्र रहना पसन्द करता है और स्वनिर्मित कानून से, स्वशासित होना उनकी जातीय विशेषता है। यही कारण है कि हो जनजाति के लोगो में मानकी मुण्डा शासन प्रणाली को सदियों से हिफाजत कर रखा है।

कोल्हान् पीड़ाहाट का परिचय – कोल्हान्–पीड़ाहाट कहाँ है? यह जानकारी झारखण्ड के, छोटानागपुर संथाल परगना के अधिकांश लोगों को नहीं है। कोल्हान्–पीड़ाहाट झारखण्ड राज्य के पश्चिमी सिंहभूम जिले का जनजातीय इलाका है। कोल्हान्–पीड़ाहाट देश का ऐसा भू–भाग है जहाँ देशज मानकी–मुण्डा प्रशासन प्रणाली अबतक मूलरूप में जीवित है।

कोल्हान्–क्षेत्र भारत में, अपने अनोखे रूप में सदा से एक स्वतंत्र गणराज्य रहता आया है। कोल्हान् के प्राचीन इतिहास में छोटानागपुर पठार के अप्रवासित 'हो' लोगों का वर्णन मिलता है, जिसमें सिंहभूम के आदिवासी भूंईयाँ जाति के लोंगो को परास्त कर उनके बसने का उल्लेख है।

कोल्हान : एक झलक – पश्चिमी सिंहभूम जिला के चाईबासा सदर क्षेत्र सामान्यतः कोल्हान् क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

(क) देशज मानको मुण्डा प्रशासन इकाइयाँ

(1) क्षेत्रफल (वर्ग मी.) 5041
(2) पीड़– 26
(3) ग्राम – 913
(4) मानकी– 75
(5) मुण्डा–904

(ख) प्रशासनिक इकाइयाँ (कोल्हान क्षेत्र)

(1) मेसो परियोजना क्षेत्र 1 चाईबासा (2) अनुमण्डल- 1 चाईबासा 2. जगन्नाथपुर

(3) सामुदायिक विकास प्रखण्ड-7 अंचल–7 एवं थाना - 7, चाईबासा, मझगाँव, कुमारडुगी मझारी, तांतनगर, टोन्टो, जगन्नाथपुर एवं नोवामुण्डी

पोड़ाहाट एक झलक – पश्चिमी सिंहभूम के चक्रधरपुर अनुमण्डल का क्षेत्र सामान्यतः पीड़ाहाट क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

(क) देशज मानकी मुण्डा प्रशासन इकाइयाँ

(1) मानकी-12

(2) मुण्डा-158

(3) ठीकेदार-243

(ख) प्रशासनिक इकाइयाँ (पीड़ाहाट)

(1) मेसो परियोजना क्षेत्र-1, चक्रधरपुर

(2) अनमण्डल-1, चक्रधरपुर

(3) सामुदायिक विकास प्रखण्ड-7, अंचल-5 यथा- चक्रधरपुर, सोनुआ, गोइलकेरा, मनोहरपुर एवं बन्दगाँव, आनन्दपुर एवं गुदड़ी

(4) थाना-7 यथा- चक्रधरपुर, सोनुआ, गोइलकेरा, मनोहरपुर, बन्दगाँव, कराईकेला, चिरिया।

कोल्हान् क्षेत्र के विकासकी योजना – कोल्हान् क्षेत्र के झारखण्ड का सबसे पिछड़ा जनजातीय क्षेत्र है। यहाँ की विशिष्ट परम्पराओं, परिस्थितियों तथा जनभावनाओं के अनुरूप वित्तीय वर्ष 1987–88 से बिहार सरकार द्वारा बिहार सरकार के योजना आय-व्ययक बजट 'कोल्हान् क्षेत्र के विकास योजना' में अलग से राशि का बजट उपबंध था।

'कोल्हान् क्षेत्र के विकास की योजना' के लिये वित्तीय वर्षीय बजट उपबंध की

तालिका (लाख में) :

1. पंथों, पुलो, पुलियों का निर्माण	89-90	90-91	91-92	92-93
2. पेयजल जलापूर्ति की व्यवस्था हेतु कुआँ चापाकलों आदि का निमार्ण	80.00	80.00	1.10	94.00
3. विद्यालय/छात्रावास भवनों का निर्माण	40.00	40.00	65.00	50.00
4. चिकित्सा केन्द्रों/उप केन्द्रों की स्थापना एवं चिकित्सा की अन्य सुविधाओं की व्यवस्था	60.00	60.00	85.00	75.00
5. नियोजन हेतु तकनिकी प्रशिक्षण की व्यवस्था	-	-	-	-
6. भूमि और जल संरक्षण	-	-	-	-
7. ग्रामीण एवं लघु उद्योगों की सीपना	90.00	-	47.50	45.00
8. क्रय हेतु सहयोग समिति का गठन	40.00	40.00	44.00	40.00
9. वन उत्पादन से प्राप्त वंस्तुओं के विक्रय हेतु सहयोग समितियों का गठन	40.00	40.00	43.50	40.00

स्वतंत्र कोल्हान् राज्य की माँग – सिंहभूम जिले में अंग्रेजो के आगमन के पूर्व, सिंहभूम, पोड़ाहाट के राजाओं के शासित क्षेत्र था। उन्हें 'सिंहभूम के राजा' की मानद उपाधि प्रजा ने ही दे रखी थीं परन्तु क्षेत्र के आदिवासी 'हो' जाति पर उनका प्रशासन और नियंत्रण नगण्य ही था।

कोल्हान्-पोड़ाहाट परगना भारत में, अपने अनोखे रूप में सदा से एक स्वतंत्र गणराज्य रहता आया। कोल्हान् में सर्वप्रथम एकरारनामा के अनुसार सन् 1838 में ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन लिया गया, तो यहाँ की शासकीय ईकाई को- 'कोल्हान् गवर्नमेंट ऑफ स्टेट' – का नाम दिया गया।

कोल्हान् परगना का पाईमाइस सन् 1913–18 ई में मालिक का नाम- 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फोर इण्डिया इन कौंसिल दर्ज हुआ, जो उस समय के भारत सरकार का सबसे बड़ा पदाधिकारी का और वह ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने ब्रिटिश सरकार का मिनिस्टर के हैसियत से जवाबदेही था।

'कोल्हान् रक्षा संघ' द्वारा समय-समय पर स्वतंत्र कोल्हान् राज्य की मांग भारत

एवं बिहार सरकार से करता रहा है।

कोल्हान् रक्षा संघ के प्रतिनिधियों द्वारा 8 सितंबर , 1981 को इंगलैण्ड में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉरकॉमनवेल्थ के राज्य मंत्री को भारत में 'कोल्हान सरकार की स्वायतत्ता' की मांग को लेकर ज्ञापन देने गये थें, यह समाचार बिहार के समाचार पत्रों में छपा।

छोटानागपुर के पठारी इलाके के एक भू-भाग में पश्चिमी सिंहभूम कोल्हान् नामक कथित अलग राज्य के समर्थकों द्वारा इसका सीधा सम्बन्ध बिहार के पश्चिमी सिंहभूम जिले के ब्रिटिश हुकुमत और सुबाएं पोड़ाहाट के विरूद्ध 1831– 32 में हुए कोल विद्रोह से जोड़ा जाता है। यह शोध का विषय बिन्दु है।

उपसंहार – मानकी-मुण्डा प्रशासन हो आदिवासियों का परम्परागत, रीति-रिवाज तथा संस्कृति पर आधारित है। मानकी-मुण्डा प्रशासन प्रणाली राजनैतिक बुराइयों से परे है, स्थायी है तथा ग्रामीण है। लेकिन देशज मानकी-मुण्डा प्रणाली के विरूद्ध यहाँ तीन प्रकार का प्रशासन चल रहा है-

(क) झारखण्ड ग्राम पंचायत प्रशासन

(ख) सामान्य पुलिस प्रशासन

(ग) झारखण्ड भूमि सुधार कानून

इससे हो जनजातियों के स्वतंत्र प्रिय भावनाओं को ठेस पहुँची है। इस प्रशासकीय इकाइयों के लागू होने से कोल्हान्-पोड़ाहाट में बहुत सारे भ्रम और विरोधाभास आ खड़े हुए हैं। परम्परागत कोल्हान् प्रणाली के विपरीत नयी प्रणाली जटिल प्रशासनिक विचारधारा पर निर्भर है। इससे कोल्हान् के देशज लोगों का शोषण बढ़ा है।

सरकार को देशज मानकी-मुण्डा प्रणाली को पुनर्जीवित करना चाहिए तथा कोल्हान्-पोड़ाहाट के हो-जनजातियों को विश्वास में लाना चाहिए ताकि 'हो' जनजातियों में पनपी स्वंतत्र कोल्हान् राज्य की मांग को हमेशा के लिए खारिज किया जा सके।

=o=o=o=

6. हो-धर्म और सिङबोंगा

'हो' का शाब्दिक अर्थ है - मनुष्य, आदमी, मानव। 'हो' एक उपजाति है, जो प्रकृति के पूजक हैं। हो आदिवासी के पूर्वज आदि से ''बोंगा बुरू'' (देवी-देवताओं) के उपासक रहे हैं, जो निराकार है। ये मूर्ति पूजक नहीं है और न हीं अवतार को मानते हैं। 'हो' का न कोई मन्दिर है, न मस्जिद है, न गिरजा है और न ही कोई धर्म-ग्रंथ ही।

अतः हो आदिवासी अपने को 'हो' और अपने धर्म को ''हो-दोरोम'' कहते हैं। डॉ. डी. एन. मजमुदार ने, 'हो' के धर्म को ''बोंगाईज्म'' (बोंगावाद) अर्थात् ''बोंगा-धर्म'' का नाम दिये जाने की सिफारिश की है।

'बोंगा' एक अलौकिक, अदृश्य सर्वोच्च शक्ति है। हो लोगों का 'बोंगा' ही धर्म का आधार है। बोंगा ही हो आदिवासियों का-'हो-दोरोम' है। 'बोंगा एवं 'आत्मा' हो दोरोम का मूल प्रकृति है।

हो आदिवासी हिन्दू नहीं हैं - दिकु एवं सदान, - हो, मुण्डा, संथाल, खड़िया, बिरहोर एवं उरावं आदिवासियों के धार्मिक नाम को संयुक्त रूप में - 'सरना- धर्म' के नाम से सम्बोधित करते हैं तथा उसके पवित्र पूजा-स्थल को देसाउलि, जएरा, जाहेर, थान, माझी तान, सरना एवं ग्राम्य-झाड़ी थान, 'सरना' एवं 'सरना-स्थल' कहते हैं। सरना-धर्म मानने वाला को 'सरना' कहते हैं। इसाई मिशनरी द्वारा सरना-धर्म मानने वाला को संवसार कहते हैं।

आज दिकुओं एवं सदानों द्वारा हो आदिवासियों को एक सुनियोजित शड्यंत्र के तहत् 'हिन्दू' कहे जाने लगा है और उसके धर्म को हिन्दू-धर्म। जनगणना प्रपत्र में, जनगणना पदाधिकारी/कर्मचारी द्वारा अनुसूचित जनजाति/आदिवासी कॉलम में- ''अनुसूचित जनजाति (उप जाति 'हो')'' नहीं लिखकर 'हिन्दू' लिखा जाता है और धर्म कॉलम में 'सरना-धर्म' लिखा जाता है। इससे 'हो' एवं 'हो-दोरोम' पर तो कुठाराघात किया ही जाता है तथा जनगणना प्रतिवेदन में भी हो आदिवासियों की जनसंख्या कम हो जाता है।

उसी तरह सुश्री/श्रीमति.....'कुइ' के स्थान पर 'देवी' लिखा जाता है, जो घोर आपत्ति जनक है। यह विदित हो की 'हो' लड़का व पुरुष को 'कोवा' एवं

लड़की व औरत को 'कुइ' कहा जाता है।

मैं यहाँ स्पष्ट उल्लेख कर देना चाहूँगा कि- 'हो आदिवासी हिन्दू नहीं हैं।' हो, 'हो' है। एक जाति है। आदिवासी है, अनुसूचित जनजाति है। इसके धर्म, हिन्दू-धर्म नहीं है, बल्कि हो-धर्म है।

हाँ यह बात सही है कि जो हो-आदिवासी शहर में रह गया है। बस गया है, विकास शहरीकरण एवं हिन्दुओं के सम्पर्क में आने से अपने को हिन्दू कहते हैं तथा हिन्दू कहलाने में गर्व महसूस करते हैं। वैसे लोग ही अपने धर्म को भी हिन्दू-धर्म कहते हैं। ये लोग अपनी भाषा एवं संस्कृति को भी भूल चुके हैं। अपने को 'हो' कहने में तुच्छ समझते हैं। लज्जा अनुभव करते हैं।

'हो' आदिवासी का अपना अलग धार्मिक सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक एवं प्राकृतिक है, अस्तित्व है, पहचान है, पवित्र नैतिकता है, अनोखा रीति-रिवाज है। जो 'हो' होने का गौरव प्रदान करता है तथा विभिन्न जातियों एवं सम्प्रदायों से अलग करता है।

सिङबोंगा – सृष्टि का सबसे बड़ा, सर्वोच्च एक अलौकिक शक्ति सृष्टिकर्ता है, जिसने धरती, जल, आकाश, सूर्य, चांद, सितारे, प्रकाश, पेड़-पौंधे, जीव-जन्तु और मानव का सृष्टि किया है। जो जन्मदाता है। पालनकर्ता है। संहार कर्ता है। ऐसा 'हो' लोग इस अलौकिक सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता को-"सिङबोंगा"- के नाम से सम्बोधित करते हैं।

इस सृष्टिकर्ता -'सिङ.बोंगा'- को विभिन्न नामों से पुकारते हैं। 'दिकु' यानि 'हिन्दू' इसे भगवान, ईश्वर के नाम से, ईशाई, इसे परमेश्वर, प्रभु-यीशु के नाम से तथा मुसलमान इसे 'खुदा' 'अल्लाह' के नाम से याद करते हैं, प्रार्थना करते हैं। अंग्रेज इसे "गॉड" कहते हैं।

छोटानागपुर के आदिवासी हो, मुण्डा एवं बिरहोर इसे, सिङबोंगा' कहते हैं। संथाल इसे 'माराड.बुरू' कहते हैं। उरांव इसे 'धर्मेश' कहते हैं। अन्य बोंगा-बुरू सिङबोंगा के अधीनस्थ है।

सिङबोंगा और सिंगि बोंगा में अन्तर – कुछ लोग जानकारी के अभाव में "सिंगि-बोंगा" को ही "सिङबोंगा" मानते हैं।

सिङबोंगा :- सिङबोंगा को ही सिंड़वोगा भी कहते हैं। सिङबोंगा अलौकिक है। अदृश्य है। सर्वोच्च शक्ति है।

सिंगिबोगाः- सिंगि' सूरज को कहते हैं और 'बोंगा' सर्वोच्च शक्ति हैं सिगिबोंगा की उत्पति, सिड.बोगा द्वारा की गई है। सिंगि में प्रकाश है। रोशनी है। सिंगिबोंगा, अपने प्रकाश से सारे संसार को प्रकाशित करता है। 'हो' लोग सिंगिबोंगा की पूजा नहीं करते हैं। 'हो' लोग निराकर की पूजा करते हैं। 'सिंगिबोगा' चमकता हुआ एक आकाशीय पिण्ड है। वस्तु है।

ततङ – 'हो' आदिवासियों का मानना है कि सृष्टिकाल में 'सडिबोंगा' एक बुढ़ा आदमी के रूप में था। सृष्टि के प्रथम आदि मानव - 'लुकु-एवं लुकुमि' के पास दर्शन दिया करता था। उस समय लुकु-लुकुमि, सिंडबोंगा को ततङ (आजा दादू) कहकर पुकारते थे। जब आदि मानव लुकु-लुकुमि को सृष्टि का ज्ञान होने लगातो वे पाप करने लगे। ततङ् की बात को नहीं मानने लगे, तब ततङ् (सिंडबोगा) को शर्म महसूस होने लगा। खराब लगने लगा। इस कारण से 'सिंडबोंगा', जिसे लुकु-लुकुमि 'ततङ' कहते थे, दोनों के पास कभी दर्शन नहीं दिया। उस समय से आज तक 'सिंडबोंगा', 'हो' के पास कभी न दर्शन ही देता है और न ही प्रकट होता है। फिर भी ततङ (सिंडबोंगा) हम मानव को देखता है। सुख-दुःख में, सहायता करता है।

रूप – सिंडबोंगा का कोई रूप-रंग नही है। वह अलौकिक है। अदृश्य है। ऐसा 'हो' लोगों का मानना है। फिर भी 'हो' का विश्वास है कि सिडबोंगा आत्मा रूप में है। बुढ़ा आदमी के रूप में माना गया है। उसका बाल पका हुआ है। सफेद है। सफेद धोती एंव सफेद कमीज पहनता है। ऐसे ही रूप में 'सिंडबोंगा' सपना में आता है। और लोगों से बात करता है। 'हो' लोगों का ऐसा कहना है।

निवास – हो का विश्वास है कि 'सिंडबोंगा' सिरमा (ऊपर) यानि स्वर्ग में रहता हैं उसका अपना घर नहीं है। खेत-बाड़ी नहीं हैं। उसे भोजन की आवश्यकता नहीं हैं। उसकी कोई पत्नी नहीं है। बाल-बच्चे नहीं है। भाई-बन्धु भी नहीं है और न ही कोई कुटुम्ब ही है। 'सिंडबोंगा' 'ऊपर' से ही मानव एवं जीव-जन्तुओं को देखता है तथा 'ऊपर' से ही मानव प्रार्थना एवं विनती को सुनता है।

कार्य – 'हो' लोग सिंडबोंगा को सृष्टिकर्ता मानते हैं। इसलिए 'सिंडबोंगा' को परम पिता और अपने को उसका पुत्र मानते हैं। वह बहुत दयालु है। सभी जीव-जन्तुओं को एक समान देखता है। सुख में, दुःख में सहायता करता है। विपत्ति में रक्षा करता है। वर्षा लाता है। फसल को अच्छा रखता है।

दण्ड – 'हो' लोंगो का विश्वास है कि -''सिंडबोंगा'' बहुत दयालु है। इसके

बावजूद गलती करने पर, दोष करने पर दण्ड भी देता है। घर-परिवार के आदमी को, सदस्य को बुखार करता है। बारह बजे से संध्या चार पांच बजे तक या बारह बजे रात से प्रातः पांच-छः बजे तक ठण्डा के साथ बुखार आता है। बुखार के साथ मुँह में घाव भी होता है। घर के पालतु-पशुओं गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़ को दुःख देता है। तथा फसल को नुकसान पहुँचाता है। इन कारणों से लोगों को आभास हो जाता है कि 'सिंङबोंगा-दण्ड' दे रहा है। इसका आभास लोगों को सपना में भी होता है। जब परिवार को कोई सदस्य गाय, बैलों को चराता हुआ। गाय, बैल ढुँसता हुआ, तसर पालता हुआ, खलिहान छिलता हुआ तथा धान काटता हुआ सपना देखता है तो लोग समझते हैं कि घर में, परिवार में कोई गलती हुई है। कोई दोष हुआ है, इसलिए सिंङबोंगा दण्ड दे रहा है।

भोग – 'सिंङबोंगा' को जल के समान स्वच्छ एवं पवित्र माना गया है। इसलिये भोग के रूप में सफेद, जो पवित्रता का सूचक हैं, वस्तुओं के भोग को, बलिदान को पसन्द करता है। भोग के रूप में –अरवा चावल, हड़िया या हड़िया रासि दिया जाता है। सफेद मुर्गा, सफेद बकरा का बलि दिया जाता है।

आराधना –'हो' आदिवासियों में नित्य-प्रतिदिन पूजा-पाठ करने का रिवाज नहीं है। न तो हिन्दुओं की तरह व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप में प्रार्थना करने, भजन करने, पूजा करने का रिवाज है, न ही ईशाईयो की तरह सामूहिक रूप में बिनती करने का पद्धति ही है।

(क) 'दियुरि' का आराधना – गाँव का दियुरि (पाहन), जो गांव के धार्मिक मामले का प्रधान है, पर्व व्योहारों (मागे, बा, हेरोः, बसाउलि एवं जोमनमा) एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसरों पर 'देसाउलि' एवं जएरा (सरना) स्थल पर 'सिंङबोंगा' की अराधना करता है। गोहारि (विनती) करता है। प्रार्थना करता है। सिंङबोंगा से, गाँव के लोगो का सामूहिक हित-लाभ का कामना करता है। गाँव के लोगों को, गाँव के प्रजाओं को शत्रुओं से, शैतानों से, भूत-प्रतों से, जंगली जानवरों से, साँप-बिच्छुओं से रक्षा करने की कामना करता है। प्राकृतिक विपदा, आंधी-तुफान, बाढ़, आग, बिजली एवं अकाल से रक्षा करने की प्रार्थना करता है। अच्छी वृष्टि एवं अच्छी फसल होने की दुआ करता है। गाँव में हैजा, चेचक तथा महामारी जैसे- रोगों को नहीं आने देना तथा गांव के लोगों को इन रोगों से रक्षा करने का विनती करता है।

(ख) आदिङ् घर में आराधना – जन्म, मृत्यु एवं शादी आदि संस्कारों के समय तथा पर्व-त्योहारों के अवसरों में लोग अपने-अपने 'आदिङ घरों' में सिंङबोंगा के नाम से पूजा-पाठ करते हैं। घर के परिवार के बुजुर्ग आदमी पूजा करता है। गोहारि करता है। बिनती करता है। सिड.बोंगा से प्रार्थना करता है कि घर-परिवार के सदस्य सदैव सुख रहे। शान्ति से रहे। दुःख में, तकलीफों में, प्राकृतिक-विपत्तियों में तथा जंगली जानवरों से परिवार के सदस्यों को सहायता करने का, रक्षा करने का गोहारि करता है। हैजा, चेचक, महामारी जैसे-संक्रामक बिमारियों से घर-परिवार के सदस्यों को रक्षा करने का प्रार्थना करता है।

तसर, लाह पालन के तसर एवं लाह को रोग नहीं होने रोग से रक्षा एवं बढ़िया होने का गोहारि करता है। ग्वाल पूजा में ग्वाल घर में गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़ आदि पालतू पशुओं को फूलने-फलने तथा रोगों से, जंगली जानवरों से रक्षा करने का प्रार्थना करता है। खेतो में खलिहानों में अच्छी फसल होने, कीड़ो से, जानवरों से, रोग से फसल को बचाने तथा बढ़ियाँ फसल होने की विनती करता है। इन सबों के हित-लाभ के लिये "सिंङबोंगा" को भोग भी दिया जाता है।

गोहारि – दुःख के समय में विपति के समय में 'हो' लोग सिड.बोंग से गोहारि करते हैं, रक्षा की कामना करते हैं :-

सिरमा रेन सिंङबोंगा, ओते दिसुम गोमके
अमगे गुयु केनम, अमगे चपारा केनम
अमगे उपन केनम, अमगे जपन केनम
अमगे जोनोम केनम, अमगे जाते केनम
अमगे हरा केनम, अमगे मरङ केनम
अमगे एंगा तन, अमगे अपु तन
अले मानव को, अमगे नेल लेम
अमगे अतेन लेम, अमगे होरों लेम
अमगे जंगी लेम, अमगे लेका लेम
अमगे गन्डा लेम,
तञ
सिंङबोंगा ।।

=o=o=o=

7. हो-जाति के देसाउलि-जएरा: एक परिचय

'हो' का मूल शाब्दिक अर्थ - मनुष्य, आदमी होता है। जे. डेनी - 'हो इंगलिस डिक्शनरी' में 'हो' का अर्थ - 'मनुष्य' अंकित किया है।

यह सर्वविदित है कि अधिकतर आग्नेय जातियों ने अपना नाम मनुष्य वाचक रखा है। मुण्डा और संथाल अपने को - 'होड़ो एवं होड़' कहते हैं। अर्थ है - 'मनुष्य'। 'हो' जाति के लोग भी अपने को 'हो' कहते हैं, जिसका अर्थ है - मनुष्य। 'हो''जाति वाले 'ड' का उच्चारण नहीं के बराबर करते हैं।

डाक्टर के. के. दत्ता प्राधानाध्यापक, पटना विश्वविद्यालय जो भारतीय पुरातत्व इतिहास के प्रवर्तक है, उनके शब्दों में 'हो' भारत की वह महान जाति है जो कभी पराजय नहीं मानती है।

अतः 'हो' भारत का वह महान आदिम जाति है, जो स्वभाव से सुशील, ईमानदार, स्वतंत्रता प्रिय एवं अच्छी शारीरिक शक्ति तथा अपने हक की रक्षा के लिए युद्ध को पसंद करने वाली लड़ाकू जाति है।

'हो भाषा' हो जाति द्वारा बोली जाने वाली आदि भाषा है। भाषा की अल्प्राणता, सरलता, कोमलता तथा मनोहर प्राकृतिक विशेषता भाषा का प्राण है।

'हो-भाषा, मुण्डा एवं संथाली भाषा से काफी समता है, फिर भी इसकी अपनी अलग पहचान तथा विशेषता है।

छोटानागपुर के अंतर्गत सिंहभूम जिले के 'कोल्हान' एवं पोड़ाहाट, क्षेत्र में 'हो' लोगों की बहुलता है। झारखण्ड के अतिरिक्त उड़िसा, बंगाल, आसाम एवं मध्य प्रदेश आदि राज्यों में भी निवास करते हैं।

'हो' लोगों के स्वभाव के बारे में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न तरह के मत व्यक्त किए हैं।

प्रणव चन्द्र राय चौधरी के अनुसार-सिंहभूम के कोल स्वभाव से ही युद्ध को पसंद करने वाले होते हैं। लेकिन अपना देश छोड़ना और कोई बेकार का काम करना उन्हे बिल्कुल पसन्द नहीं होता। उनमें सिंहभूम के कोल अच्छी शारीरिक शक्ति वाले होते हैं।

''कोल्हान का अन्तरीय क्षेत्रीय एकांत ही रहा, क्योंकि हो लागों ने किसी भी

अजनबी या यहाँ नहीं बसने दिया। यहाँ तक किसी को जाने-आने की भी पूरी छूट नहीं दी।

उन्होने आगे जिक्र किया है कि - 'कलकता राजधानी से दो सौ मील के भीतर कोल्हान के 'हो' बंगाल टाइगर सरीखे विचरते थे। लड़का-कोल भारत के साथ आदिवासी समुदायों में एक अवश्य थे, मगर अपनी दृढ़ता और मौत को सिर पर लेकर चलने वाले भारत में अपने ढंग के अकेले थे।'

अतः 'हो सरल, सुशील, ईमानदार, परिश्रमी और स्वतंत्र स्वभाव के होते हैं। प्राणों की बलिदान देकर अपनी पहचान तथा अधिकारों की रक्षा करना एवं स्वनिर्मित आदि कानून से शासित होना उनकी जातीय विशेषता है।'

देसाउलि जएर का सांस्कृतिक अध्ययन

छोटानागपुर एवं संथालपरगना के 'हो', 'मुण्डा', संथाल एवं उराँव आदिवासी अपने धार्मिक उत्सव के लिये गाँव किनारे अवस्थित साल वृक्ष के नीचे अपने अनुष्ठान करते हैं।

'हो' आदिवासी के पूर्वज आदि से देवी देवताओं (बोंगा-बुरूकों) के उपासक रहे हैं और आज भी हो लोग - 'देसाउलि' (सरना) मतावलम्बी हैं। आदि से ही ये मूर्ति पूजक नहीं हैं और न तो कोई अवतार को मानने वाले हैं। इनके सभी देवी-देवता निराकार हैं और प्रकृति के बीच वृक्ष-वृन्दो, पहाड़-जंगलों और नदी-झरनों में निवास करते हैं। धार्मिक उत्सवों के अवसरों पर सभी देवी-देवता, गाछ-पूंछ के तले ही पूजे एवं भेंट बलिदान चढ़ाये जाते हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है - 'हो' आदिवासी प्रकृति के पूजक हैं। इन लोगों का न मन्दिर है, न मस्जिद है ओर न गिरजा। इन लोगों का 'देसाउलि' एवं 'जएर' ही मन्दिर, मसजिद और गिरजा है।

'हो' आदिवासी का कोई धार्मिक ग्रंथ भी नही है और न ही कोई पुस्तक ही और न धार्मिक प्रचार के लिए कोई संस्था ही। फिर भी आदिकाल से वर्तमान वैज्ञानिक युग तक विश्व इतिहास में राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन, जगंल-पहाड़ों की लकड़ियों का बेरहमी से कटाई, नदी-नालों में बाँधों का बंध जाना, गांव का शहरीकरण एवं औद्योगिकीरण होना, यातायात का विकास तथा दिकुओं के साथ सम्पर्क के बावजूद उनके धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक-रिवाजों का अबतक

जीवित रहना, सिंङबोंग - शक्ति (ईश्वरीय शक्ति) का अनुपम वरदान ही कहा जा सकता है।

'हो' आदिवासी के लोग 'सरना-स्थल' को 'देसाउलि' और 'जएर' या 'जएरा' कहते हैं। इन लोगों का दो सरना स्थल होता है -

(क) देसाउलि

(ख) जएर या जएरा

(क) देसाउलि : - देसाउलि (देसा = दिसुम हतु। उलि = सिरजोन) का शाब्दिक अर्थ पवित्र पूजा स्थल है, जहाँ संसार के सृष्टिकर्ता यानि ग्राम देवता निवास करता है।"

(ख) जएर या जएरा- "जएर या जएरा" (ज=जं, एर = एर। ज = जं, एरा = कुई) का शाब्दिक अर्थ है - "जं एर।" "जं एर एर।" "जएर या जएरा वह प्राकृतिक पवित्र पूजा स्थल है जहां संसार के बीज को बोने वाली यानि ग्राम देवी (सरना-देवी निवास करती है।)"

देसाउलि जएरा का महत्व

'हो' आदिवासियों में देसाउलि एवं जएर स्थल को दो दृष्टिकोण से काफी महत्व है -

(क) सांस्कृतिक दृष्टिकोण से

(ख) पर्यावरण दृष्टिकोण से

(क) सांस्कृतिक दृष्टिकोण से

(1) देसाउलि-बोंगा "हो" आदिवासियों का महत्वपूर्ण पूजा है। यह बोंगा मागे-पर्व से पूर्व ग्राम वासियों के निर्धारित तिथि को 'देसाउलि-स्थल' में पूजा जाता है। पूजा-ग्राम के पहान द्वारा किया जाता है। यह पूजा साल वृक्ष के नीचे की जाती है।

देसाउलि-बोंगा के दिन ग्राम के हर एक घर के व्यक्ति को देसाउलि-स्थल जाना अनिवार्य होता है। पूजा में देसाउलि-बोंगा के नाम-बकरा, भेड़ा, हरा-मुर्गा की बलि चढ़ाई जाती है। बलि चढ़ाया गया बकरा, भेड़ा, तथा मुर्गा का सिर का मांस पाहन तथा उनके सहयोगी तथा ग्रामवासियों द्वारा खाया जाता है। मांस को देसाउलि में ही पकाकर खाने का रिवाज है। माँस को घर लाना वर्जित है।

हड़िया-रसि का तपावन भी दिया जाता है। दिउरि (पाहन) देसाउलि-बोंगा से सामुहिक हित-लाभ की कामना करता है। बिनती करता है, गोअरि करता है तथा जोअर करता है।

(2) मागे, बा, हेरोः – जोमनमा आदि पर्व को जएर या जएरा स्थल में पूजा किया जाता है। दिउरि पूजा के समय पूजा-स्थल को "जएर-कण्डा" के पवित्र जल और गोबर से लीफ कर साफ करता है। जएर-स्थल में भी पूजा साल पेड़ के नीचे करता है।

सिंङबोंगा, देसाउलि, जएरा-एरा, बुरू-बोंगा, नगे-एरा, बिन्दि-एरा पांउड़ि आदि देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। लाल, सफेद मुर्गा की बलि चढ़ायी जाती है। धुवन जलाया जाता है । अरवा चालव, सिन्दुर, हल्दी-चूर्ण, लमः बोदि आदि का भोग चढ़ाया जाता है। बलि चढ़ाया गया मुर्गा जएरा स्थल में ही दिउरि तथा उनके सहयोगी पका कर खाते हैं। मांस घर में नहीं लाया जाता है । हड़िया-रसि का तपावन भी भोग के रूप में चढ़ाया जाता है तथा दिउरि द्वारा सामुहिक लाभ की कामना करता है।

मागे-पर्व तो जएर-स्थल पर नाच-गान भी होता है तथा पूजा के समय बुरा शब्द बोलने की भी परम्परा है जैसे - हे रूजि। हे, लोःए। हे मागे इत्यादि।

(3) देसाउलि एवं जएरा में व्यक्तिगत सामुहित रूप से पूजा करने का रिवाज नहीं – 'देसाउलि या जएर, के मन्दिर, मसजिद एवं गिरजा की भांति व्यक्तिगत, सामुहिक रूप से दिन प्रतिदिन पूजा करने, विनती करने का कोई रिवाज नहीं।

ग्राम के दिउरि मागे, बा, हेरोः जोमनमा आदि पर्व-त्योहारों में ग्रामवासियों की सामूहिक हित-लाभ की विनती, निवेदन, जोअर- सिंङबोंगा, देसाउलि, जएरा, बुरू, बोंगा, नगें-एरा, बिन्दि एरा से साल भर के लिये करता है।

(4) जएर कन्डा – 'जएर कण्डा' मिट्टी का बना, वह पवित्र घड़ा है, जिसका व्यवहार ग्राम के दिउरि मागे, बा, हेरोः जोमनमा आदि पर्वो में नदी से शुद्ध जल लाकर 'देसाउलि' एवं जएर' के प्राकृतिक पूजा स्थल को साफ करता है । पवित्र करता है।

अन्य दिनों में जएर-कन्डा का व्यवहार नहीं किया जाता है। घर के अन्दर 'अदिङघर' में टाँग कर रखा जाता है।

'सिंहभूम दिसुम के हो-कोल' लोगों का कहना है कि 'जएर-कन्डा' के नाम से - 'झारखण्ड' - नाम पड़ा है। यहाँ के लोगों को 'जरकन्डि' कहते हैं।

(5) देसाउलि एवं जएरा के गाछें (पेड़ों) को काटने का दस्तुर नहीं- 'देसाउलि एवं जएर' 'हो' आदिवासियों का पवित्र प्राकृतिक पूजा-स्थल है यहाँ का लकड़ी काटना तो वर्जित है ही, थूकना, पेशाब करना, पखाना करना तथा गन्दा बोलना भी वर्जित है। सिवाय मागे-पर्व को। अनुष्ठान के समय ही दिउरि द्वारा देसाउलि एवं जएरा के सूखी लकड़ी का व्यवहार करता है। इस परम्परा को उल्लंघन करने वाले को सामाजिक दण्ड दिया जाता है । देसाउलि बोंगा जएरा एरा भी खूद सजा देता है।

(ख) पर्यावरण की दृष्टिकोण से

"देसाउलि एवं जएरा" गांव के किनारे रहता है। एक देसाउलिवा जएरा में औसत 500 सौ से 1000 तक पेड़ रहता है। वर्तमान में संख्या में कमी आई है। इसमें सिर्फ साल पेड़ ही नही, बल्कि विभिन्न तरह के पेड़-पौधे भी रहता है। लताओं का झुण्ड भी देखने को मिलता है।

साल-पेड़ के इर्द-गिर्द ही आदिवासियों का जीवन चक्र घुमता है । आदि काल से ही हो आदिवासी पहाड़ों, जंगलों, कन्दराओं एवं प्राकृतिक के तले बसने वाला आजाद पसन्द एवं स्वतंत्र विचरण करने वाला रहा है। अपने हक तथा स्वतंत्रता की रक्षा के लिये प्राणों की बलि चढ़ाने वाला अनोखा समुदाय रहा है।

आदि से ही इनके पूर्वज दूरगामी परिणामों को जानने वाले अच्छे ज्ञाता भी रहे हैं। सदियों पूर्व हो आदिवासी के पूर्वज जब घने जंगलों को साफ कर, खेती के लिये जमीन तैयार कर रहे थे तो गाँव के किनारे हजारों पेड़ों के समूह को छोड़ देते थे, काटते नहीं थे। इसके दो प्रमुख कारण थे :-

(1) धार्मिक दृष्टि से

(2) पर्यावरण की दृष्टि से

(1) धार्मिक दृष्टि से

जैसा कि पूर्व में ही उल्लेख किया जा चुका है कि हो आदिवासियों का कोई मन्दिर, मस्जिद और गिरिजा नही होता है। हाथ से निर्मित कोई बेदी भी नही होती है। अपने धार्मिक उत्सव के लिए साल पेड़ के नीचे अपना अनुष्ठान करते हैं। पेड़-पौधें एवं लताओं के इस समूह को 'देसाउलि या जएर' कहते हैं पेंड़-पौधें का

हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है।

साल पेड़ तो हो लोगों के बीच इस तरह महत्वपूर्ण है कि इसे धार्मिक प्रतीक की मान्यता प्राप्त है। साल पेड़ का हर भाग, तना, पत्ते, फूल आदि हमारे जीवन में घनिष्ठता से जुड़े हैं । विवाह का निमंत्रण-साल पत्ते में लिपटे अरवा चावल के दाने के रूप में दिया जाता है। साल-पत्तों से बने कलगी एवं पुःमें चावल, दाल, हल्दी, मसाला और सब्जियाँ लेकर विवाह हो रहे घरों में जाते हैं। अनुष्ठान हमेशा साल-पत्तों और टहनियों से बने जमड़ा (मड़वा) के नीचे होता है।

तालाक के लिये भी साल पता का व्यवहार होता है। गाँव के पंचायतों में गाँव के मानकी, मुण्डा या दिउरि एक सदस्य को साल पता देता है, जो तलाक पाने वाले पक्ष का प्रतिनिधित्व कर रहा होता है । यदि पंचायत में साल-पता को बीचों-बीच चीर दिया जाता है, तो तलाक स्वीकृत कर लिया जाता है और विवाह टूट जाता है, इसे 'हो' लोग 'सकम चचः' कहते हैं।

शादी-विवाह, पर्व त्योहार, जन्म-मृत्यु आदि विशेष प्रकार के संस्कारों में साल-पत्तों के कलगि एवं पुः में भोजन, तरकारी खाने, दोना में हड़िया व पानी पीने तथा पत्ता में नमक, मिर्चा आदि देने का रिवाज है।

शादी विवाह एवं विशेष संस्कारों में मेहमानों को साल-पत्ते की बीड़ी एवं पिका बनाकर पिलाया जाता है।

बोंगाओं तथा पितृआत्माओं को साल के पते में भोग (भोजन, हड़िया, हड़िया राशि) दिया जाता है। पूजा जाता है। दियुरी, पहान साल के पत्तों पर अरोआ चावल रखकर घर-दुवार, व्यक्ति के शुभ-अशुभ घटनाओं, भूत-प्रेतों के प्रकोप आदि के लक्षणों को दिखता है, बताता है।

जब गाँव घर में किसी आदमी की मृत्यु हो जाती है तो उसके मृत शरीर में लगाने के लिये साल-पता के दोना में हल्दी मिला तेल लाया जाता है और मृत शरीर में लगाया जाता है।

हमारे हो आदिवासियों में साल-वृक्षों, पत्तियों, पुष्पों को पूजने तथा तत्संबधित बा-पोरोब मनाने की प्राचीन परंपरा रही है। वे इसे साल के वृक्ष पर खिले सफेद रंग के फूल को सृष्टि और सादगी के प्रतीक मानते हैं।

इस तरह से "देसाउलि" एवं "जएर" हो आदिवासियों का प्राकृतिक सौन्दर्य, सांस्कृतिक- परम्परा तथा धार्मिक अस्मिता को संजोकर रखने वाला खातियान है।

(2) पर्यावरण की दृष्टि से

सिंङबोंगा ने प्रकृति को, सृष्टि को बड़ा सुन्दर, बड़ा अनुपम और वैज्ञानिक रीति से बनाया गया है। सजाया है मानव व जीव-जन्तुओं को जीवित रखने तथा वायुमण्डल के वायु को शुद्ध बनाये रखने के लिए हवा, पानी, रोशनी, तथा पेड़-पौधें को रचा है।

संसार का 1/3 भाग में थल और 4/1 भाग में जल है। यानि पृथ्वी तल का 29 प्रतिशत और जल 71 प्रतिशत भाग घेरते हैं। मनुष्य को प्रतिदिन दो से तीन किलो तक पानी की आवश्यकता होती है। पानी के बिना मनुष्य व जीव जन्तुओं का जीवन ही समाप्त हो जायेगा, इस ख्याल से शायद सिड.बोंगा ने 4/1 में पानी का व्यवस्था किया है।

जिस तरह पानी के बिना मनुष्य जीव-जन्तु जीवित नहीं रह सकते हैं, उसी तरह शुद्ध हवा के बिना मनुष्य व जीव-जन्तु जीवित नहीं रह सकते हैं। इसलिये सिंङबोंगा ने, प्रकृति ने हवा को सदैव शुद्ध, स्वच्छ बनाये रखने की भी व्यवस्था की है। इस तरह सृष्टि ने संसार के पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने के लिये पेड़-पौंधे का सृजन किया है।

जिस रफ्तार से संसार का विस्तार हो रहा है। भौतिक विकास हो रहा है उसी रफ्तार से जंगलों, पहाड़ों की पेड़ों की कटाई हुई है तथा हो रही है। पेड़ पौधे का नष्ट भी हो रहा है। जो सृष्टि मानव के भविष्य के लिये अन्धकारमय लगने लगा है।

यह सर्वविदित है कि सभ्यता-संस्कृति के विकास में भौगोलिक स्थितियों का महत्पूर्ण हाथ होता है। भौगोलिक स्थितियों के अनुसार ही सभ्यता संस्कृतियां विकसित होती है।

भारत के सिंधु-घाटी व (सिंदुरी गाटो), हड़प्पा (हो रप्पः), तथा मोहनजोदोड़ो (मेंजो दइ गोड़) की सभ्यता के जनक तथा दुनिया में सबसे पहले सभ्य होने वाले या कहे, जाने वाले हो, मुण्डा, संथाल जाति के आदिवासी रहे हैं। इन्होंने ही सर्वप्रथम धान की खेती करने का आविष्कार किया था। ये जाति काफी विकसित रहे हैं। जो कालक्रम में प्राकृतिक घटनाओं एवं आर्यो के साथ युद्ध की घटना ने विकसित बिन्दु तहस-नहस करते हुए जंगल-पहाड़ों में भागने के लिये विवस किया।

इसलिये डॉ. के. के. दत्ता, प्राधानाध्यापक, पटना विश्वविद्यालय, जो भारतीय पुरातत्व इतिहास के प्रर्वत्तक ने -'हो-आदिवासी को भारत की महान जाति की संज्ञा

से विभूषित किया।'' ऐश्वर्ड ऐमज ने भी हो- लड़का कोल जाति की भूरी-भूरी प्रसंशा की है।

इससे साफ जाहिर होता है कि - हो, आदिवासी में ही काफी विकसित, तकनीकी ज्ञाता, तथा सभ्य के साथ दूरगामी घटनाओं के ज्ञाता भी रहे है। इनके पूर्वज जानते थे कि कई शताब्दियों के बाद संसार के पेड़-पौधे नष्ट हो जाएंगे। जंगल पहाड़ों के पेड़-पौंधे काटे जाएंगे, विरान हो जाएंगे। यह भी जानते थे कि - वनस्पति की रक्षा, प्राकृतिक संतुलन, पेड़-पौधें सृष्टि के आवश्यक घटक हैं। ये जीवों द्वारा उत्सर्जित, कार्बन-डाईऑक्साइड, कल-कारखाना से निकले गैस व धुवाँ तथा विभिन्न तरह से प्रदूषित वायु को ग्रहण कर इसे प्राण-वायु ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। प्रकृति में ऑक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड के अनुपात को संतुलित करते हैं। इसलिये तो सृष्टि बची है। इस घटनाक्रम की विभिषिका को आदिवासियों के पूर्वज जानते थे। इसलिए हो आदिवासी के पूर्वज जब घने जंगलों, पहाड़ों को साफ कर रहने और खेती के लिये जमीन तैयार करते थे, तो गाँव के किनारे पाँच -सौ, हजार साल वृक्ष, अन्य पेड़-पौधें व लताओं समूह को छोड़ देते थे, काटते नहीं थे। जो आज भी हर हो-आदिवासियों के गाँव में विद्यमान है, जिसे 'हो' लोग 'देसाउलि एवं जएर या जएरा' कहते हैं।

जिस अनुपात में हो-आदिवासी के गाँव की जनसंख्या होती है। गाय, भैंस, भेड़, बकरियाँ होती है, उसी अनुपात में देसाउली या जएर में वृक्षों को छोड़ा जाता है, जो गाँव के पर्यावरण को संतुलित रख सकता है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि एक गाँव के देसाउलि एवं जएर में इतना पेंड़-पौंधे की समूह होता है कि एक गाँव की प्रदूषित वायु को शोषित कर शुद्ध कर सकता है। एक गाँव के ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड के अनुपात को संतुलित कर सकता है।

=o=o=o=

8. हो आदिवासी हिन्दू नहीं हैं

'हो' आदिवासी, आदिवासी है। 'हो' हो हैं। 'हो का अर्थ है - मानव, मनुष्य। हो का जाति भी 'हो' है।

'हो' का अपनी सृष्टि कथा है। इनका पुरखा लुकु-हड़म, लुकुमि बुड़ि है। 'हो' का अपना धर्म है। हो, के धर्म को, 'हो-दोरोंम' कहते हैं। इनका अपनी संस्कृति है। अपनी सामाजिक व्यवस्था है। अपना न्यायिक व्यवस्था है। अपना स्वशासन व्यवस्था है। हो की अपनी आर्थिक व्यवस्था है।

'हो' के अपने देवी-देवता हैं। 'हो' आदिवासी का सर्वोच्च शाक्तिमान अदृश्य देवता, -'सिंह.बोंगा'' है। इसके अतिरिक्त, देसाउलि, (ग्राम देवता), बुरू-बोंगा (जंगल-पहाड़ का देवता), एवं नागे-एरा (जल देवी) है। 'हो' का अपना ''दियुरि'' (पहान) है। अपनी पुजा विधि-विधान है।

'हो' का अपना अस्तित्व एवं पहचान है। हो आदिवासी स्वतंत्र रहने वाली स्वतंत्र जाति है। ये छल-कपट एवं जात-पात से रहित हैं।

'हो' आदिवासी हिन्दुओं की वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्व एवं शुद्र) के अन्तर्गत नहीं आते हैं। क्योंकि 'हो' आर्य नहीं है। ये अनार्य हैं।

यहाँ हम सिर्फ हिन्दू और हो, आदिवासी में सांस्कृतिक भेद का ही उल्लेख कर रहे हैं

हिन्दु और हो आदिवासी में सांस्कृतिक भेद

क्रम सं.	हिन्दू संस्कृति	हो संस्कृति
1. धर्म	ब्राह्मण धर्म	हो - दोरोंम
2. (क) पूजा	ईश्वर पूजा	प्रकृति पूजा
(ख) पेड़	पीपल	साल (सरजोम) पेड़
3. ग्रंथ	वेद, पुराण, उपनिषद, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, गीता	कोई लिखित ग्रंथ नहीं
4. पुजारी	ब्राह्मण, पंडित, पुरोहित	दिउरि
5. मूर्ति-पूजक	हिन्दू मूर्ति पूजक हैं।	हो प्राकृतिक पूजक हैं। मूर्ति को डाईन, भूत, प्रेत,

		चन्डी आदि की संज्ञा दी गई है।
6. अवतार वाद	अवतारवाद में विश्वास	अदृश्य सर्वोच्च शक्ति में विश्वास
7. यज्ञ	वैदिक यज्ञ	यज्ञ नहीं करते
8. ईश्वर	वैदिव देवी, देवताओं को ईश्वर के रूप में मानना	प्रकृति को बोंगा के रूप में मानना.
9. देव मान्यता	इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, सीता, दुर्गा, काली, सरस्वती, राधा। 33 करोड़ देवी-देवताओं की पूजा। व्यक्ति पूजा पन्डों/पंडितों द्वारा।	सिंड.बोंगा एवं प्रकृति की पूजा।
10. जन्म संस्कार	(क) नक्षत्र की मान्यता है। (ख) पुरुष जन्म संस्कार शुभ तथा नारी जन्म संस्कार अशुभ माना जाता है।	(क) प्रकृति मान्यता है (ख) नारी एवं पुरुष दोनों का संस्कार शुभ माना जाता है।
11. विवाह संस्कार (क) नक्षत्र की मान्यता	विवाह नक्षत्र की मान्यता, नारी अर्धांनिगी, सप्तपथी, देहज, पुरुष परमेश्वर, पुरुष की दासी।	विवाह नक्षत्र की मान्यता नहीं। पति पत्नी समान सहअस्तित्व, शोषण-मुक्त, दहेज प्रथा नहीं, पुरुष की दासी नहीं।
(ख) विवाह के प्रकार	हिन्दुओं में विवाह की एक पद्धति है।	हो में विवाह के सात पद्धति है।
(ग) विधवा विवाह	हिन्दुओं में विधवा विवाह की प्रथा नहीं है।	हो में विधवा विवाह करने की प्रथा है।
(घ) हल्दी लगाना	हिन्दुओं में हल्दी लगाना, शादी की मान्यता नहीं है। शादी के नेग के रुप में हल्दी लगाया जाता है। दुल्हा अथवा दुल्हन	हो में घर-परिवार तथा समाज के सामने युवती को हल्दी एवं सिन्दुर लगाया जाता है उसे शादी की

	को शादी के तीन या पाँच दिनों पूर्व से हल्दी लगाया जाता है। इसे सिर्फ महिलाएँ ही लगाती हैं। हल्दी लगाने के पूर्व महिला एवं पुरुष मिलकर हल्दी चढ़ाते है तथा विवाह के दिन हल्दी उतारते हैं।	मान्यता प्राप्त है।
(ङ) दहेज-प्रथा	हिन्दुओं में दहेज प्रथा है।	हो में दहेज प्रथा नहीं है।
(च) मामा का बेटा-बेटी में विवाह	हिन्दुओं में मामा का बेटी एवं बेटा से विवाह करने का प्रथा नहीं है।	हो में मामा की बेटी एवं बेटा से विवाह करने को उत्तम माना जाता है।
12. मृत्यु संस्कार (क) शव को जलाना	हिन्दु शव को जलाते हैं।	हो शव को दफनाते हैं तथा शव को जलाने की भी प्रथा है। अवशेष अस्थि-पंजर को गाड़ दिये जाने का प्रथा है।
(ख) कब्र	हिन्दुओं का कब्र नहीं होता है	हो का कब्र होता है।
(ग) आत्मा बुलाना	हिन्दुओं में आत्मा बुलाने का रिवाज नहीं है।	हो में शव को दफनाने के बाद उसके आत्मा को अदिड़ घर में बुलाने तथा स्थापित करने की प्रथा है।
(घ) पत्थर देना	हिन्दुओं में पत्थर देने का रिवाज नहीं है।	हो में दफनाने के बाद कब्र में पत्थर देने की प्रथा है।
(ङ) पितृ आत्मा का पूजा	हिन्दुओं में प्रतिदिन पितृ आत्मा की पूजा करने का रिवाज नहीं है। वर्ष में एक बार पितृपक्ष को निर्धारित तिथि को पूर्वजों की आत्मा को जल अर्पित करते हैं तथा श्राद्ध कर्म कर दान पुण्य	हो में पितृ आत्मा को प्रतिदिन अदिड़ घर में, पर्व-त्योहारों में एवं अनुष्ठानों में तथा नया-फल मूल खाने से पहले पूजा करने की प्रथा है। हो में दान-पुण्य के रिवाज नहीं है।

	(घ) स्वशासन प्रथा का प्रचलन नहीं है। (ङ) हिन्दुओं में सभी पर्व त्योहारों को पूर्णिमा के दिन मनाने की प्रथा नहीं है सिर्फ सावन पूर्णिमा को होलिका दहन का उत्सव मनाते हैं तथा खास-खास पूर्णिमा को सरोवरों में स्नान कर पूजा करते हैं। (च) हिन्दुओं में चाँद से महिना का गिनती करने का रिवाज नहीं है। (छ) हिन्दुओं में सूरज से महिना का गिनती करने रिवाज नहीं है। (ज) हिन्दुओं में हल्दी का व्यवहार अवसर विशेष पर होता है।	(घ) मानकी-मुण्डा आदि स्वशासन प्रथा है। (ङ) हो में सभी पर्व त्योहार को पूर्णिमा के दिन मनाने की आदि प्रथा है। (च) हो में महिना की गिनती चाँद से होता है। (छ) हो में सूरज से दिन की गिनती करने का रिवाज है। (ज) हो में जन्म, विवाह, मृत्यु, पूज-पाठ, पर्व-त्योहार एवं तमाम अनुष्ठानों में हल्दी का व्यवहार अनिवार्य है।
16. सामाजिक न्याय	(क) वर्णानुसार उच्चता-नीचता (ख) ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ और शुद्र सबसे नीच।	(क) वर्ण व्यवस्था नहीं है। समानता है। (ख) हो में ब्राह्मण एवं शुद्र नहीं होता है।
17. आर्थिक व्यवस्था	(क) अलाभकारी व्यवस्था (ख) असीमित सीमा (ग) भौतिक उत्पादन (घ) परायी लूट	(क) लाभकारी व्यवस्था (ख) सीमित सीमा (ग) भौतिक उत्पादन नहीं। (घ) परायी लूट की प्रवृति नहीं।

	(ङ) धन संग्रह एवं लालच	(ङ) धन संग्रह एवं लालच नहीं।
18. चिकित्सा	(क) अप्राकृतिक इलाज (ख) व्यवसाय पर आधारित (ग) विदेशी औषधि।	(क) प्राकृतिक इलाज (ख) वनस्पति पर आधारित औषधि। (ग) देशी औषधि।
19. नैतिक मुक्ति	(क) अनैतिकता (ख) कमजोर अपराधिक (ग) मक्कारी (घ) झुठे (ङ) अव्यवहारिक आदेश।	(क) नैतिकता (ख) अपराधिक नहीं (ग) मक्कारी नहीं (घ) ईमानदार, सच्चे (ङ) मानवता पर आधारित व्यवहारिक आदेश।

इन उपरोक्त भिन्नताओं के अतिरिक्त हिन्दु संस्कृति और हो आदिवासी की संस्कृति में जीवन के अनेक श्रेणी में भिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन दर्शन हिन्दुओं और हो आदिवासी का बिल्कुल भिन्न है। अतः 'हो' आदिवासी हिन्दू नहीं है।

झारखण्ड की जनजातियाँ पुस्तक में - डॉ. विमला चरण शर्मा एवं कीर्ति विक्रम ने, उल्लेख किया है कि - "जनगणना में बड़ी संख्या में अनेक जनजातियों की हिन्दू धर्मावलंबी के रूप में दर्शाया गया है, किन्तु राज्य के पाँच प्रमुख आदिवासी समुदाय संथाल, मुंडा, हो और खड़िया की बैठक में निर्णय लिया गया कि - "आदिवासी हिन्दू नहीं है।" यह निर्णाय झारखण्ड प्रदेश पड़हा राजा, माझी, परगनैत, मानकी, मुंडा, डोकलो, सोहोर-महासमिति आदिवासी धरम (सरना) परिषद के तत्वाधान में आयोजित बैठक में लिया गया, जिसमें पहान, पुजार, देवरी, देउरी, नायके आदि सभी शामिल थे।"

=o=o=o=

9. मागे लोक कथा

सृष्टिकाल की बात है। सारा संसार अंधकारमय था। अन्धकार ही अन्धकार था। जलमग्न था। कहीं कुछ नहीं था। इस अंधकारमय संसार को सिंङबोंगा सुन्दर, निर्मल, स्वच्छ और जीव-जन्तुओं से परिपूर्ण सुसज्जत संसार निर्माण करने को सोचता है। इस योजना के तहत् जमीन, हवा, बादल का निर्माण करता है। सूरज, चाँद और तारे का निर्माण करता है। जंगल, पहाड़, पेड़-पौधे और घास-फूस की सृष्टि करता है। पत्थर एवं चट्टान का निर्माण करता है। तालाब-पोखर, नदी, झरना एवं समुद्र का निर्माण करता है। जमीन, हवा और पानी में रहने वाले विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तुओं की सृष्टि करता है। जीव-जन्तुओं को जोड़ा-जोड़ा में सृष्टि करता है।

सिंङबोंगा मानव में,-लुकु' और 'लुकुमि' (पुरुष एवं नारी) का सृष्टि करता है। समय और मौसम के अनुकूल लुकु और लुकुमि में यौवन आता है। कालक्रम में समय और परिस्थिति के अनुकूल लुकु एवं लुकुमि की शादी वसंत ऋतु को पूर्णिमा की रात, साल वृक्ष के नीचे होता है।

कालक्रम में सिंङबोंगा द्वारा सृजित जीव-जन्तुओं एवं प्राणियों की जनसंख्या में आशातीत वृद्धि होती है। दूसरी और लुकु और लुकुमि की शादी हुए, चौदह साल गुजरता है, लेकिन कोई संतान नहीं होती है। जिसके कारण मानव जनसंख्या में वृद्धि नहीं हो रही थी। इन कारण से सिंङबोंगा काफी चिन्तित था। आखिर, लुकु और लुकुमि को सन्तान क्यों नहीं हो रही है। संतान की उत्पति नहीं होती है, तो मानव वंश ही समाप्त हो जाएगा।

एक दिन सिंङबोंगा आधी रात को लुकु-लुकुमि की झोपड़ी में जाता है। लुकु-लुकुमि को लुक-छिप कर देखता है। सिंङबोंगा देखता है कि 'लुकु और लुकुमि बीच में- 'चिरू-चरिः' रख कर सोये हुए हैं। इस चिरू-चरिः को पार करना वर्जित था। इस दृष्य को देखकर सिंङबोंगा समझता है कि, -''लुकु और लुकुमि'' शादी के बाद भी, अपने को भाई -बहन ही समझते थे जिसके कारण आपस में 'शारीरिक मिलन' नहीं होता था।

दूसरे दिन सिंङबोंगा - बुढ़ा आदमी (ततङ) के रूप में लुकु-लुकुमि के पास आता है और लुकु-लुकुमि से कहता है - 'तुम दोनों हड़िया' क्यों नहीं बनाते हो? हम को बहुत पीने का मन कर रहा है। जब तुम दोनों हड़िया बनाओगे, और हड़िया तैयार

हो जायेगा तो, हमको भी हड़िया पीने बुला लेना। सिंङबोंगा को बात सुनकर दोनों आश्चर्य में पड़ जाते हैं। लुकु-लुकुमि, सिंङबोंगा से पूछता है- हे ततङ? हड़िया क्या है? कैसा होता है? हड़िया कैसे बनता है? हड़िया किस चीज का बनता है? ततङ, लुकु-लुकुमि की बात को सुनता है और लुकु-लुकुमि को - "रानु एवं हड़िया" बनाने की प्रक्रिया एवं विधि-विधान को बताता है। 'रानु' एक 'रेड' दवा है। 'रानु' सात प्रकार की जड़ी-बूटी तथा पेड़ के छाल से बनता है। 'रानु' बनाने में अरवा चावल के बुकनी का व्यवहार किया जाता है। रानु का गोला सूरज की रोशनी में सुखाया जाता है। ततङ 'रानु' समय शुद्धता और धार्मिक विधान-पालन करने की भी बात बताता है।

हड़िया बनाने की विधि

ततङ, लुकु-लुकुमि को जवाब देते हुए 'हड़िया' बनाने की विधि को बताता है- हे, लुकु-लुकुमि। 'हड़िया एक पेय पदार्थ है। यह दुधिया रंग का होता है। इसका सुगंध बहुत ही मधुर होता है। हड़िया, चावल, मक्का, चोंरठा, कोदो, चोंरठ (संग) डुमर फल एवं जामुन फल का बनता है। हे, लुकु-लुकुमि तुम दोनों चोंरठ एकट्ठा करो और उसका दाना निकालो। उस दाना को मिट्टी के नये घड़ा में सिझाओ। जब दाना सीझ जाये और उसका पानी सुख जाय, तो उसे चटाई में निकालकर पसार दो। जब पसरा हुआ चोंरठ का दाना हल्का सुख जाय तो उसमें रानु का बुकनी मिला दो और उसे बढ़िया से सान कर मिला दो। इसे नये मिट्टी के घड़ा में डाल दो। जब घड़ा भर जाय तो, उसके ऊपर साल पेड़ का आग का एक अंगार और पक्का हुआ एक लाला मिर्चा भी डाल दो। इसके बाद ऊपर से घड़ा को 'रूड़-पत्ता' से ढंक दो। हे, लुकु-लुकुमि? तुम दोनों हड़िया-नहा-धोकर तथा उपवास रहकर ही बनाना।

इस तरह ततङ, लुकु-लुकुमि को हड़िया बनाने का विधान बताता है। वहाँ से जाते समय ततङ लुकु-लुकुमि से कहता है। हे, लुकु-लुकुमि। हड़िया सात दिन में पक जायेगा। सातवाँ दिन पूर्णिमा की रात होगी। उस दिन हम सुबह आ जायेंगे। हम तीनों मिलकर हड़िया पीयेंगे। हाँ, उस दिन हड़िया के साथ चखना करने के लिए चिंगड़ी मछली, केंकड़ा और मोरोः ए लुपुः बनाकर रखना।

ततङ के आदेशानुसार, 'लुकु-लुकुमि' चोंरट एकट्ठा करते हैं और उसे साफ करते हैं। इसे कूटकर दाना निकालते हैं। इन दानों को मिट्टी के नये घड़े में

पकाते हैं। जब दाना पक जाता है तो उसे नये चटाई में निकालते हैं और उसे फसारते हैं। वह सूख जाता है। उसमें रानु का बुकनी डालकर बढ़िया से सानते हैं। इसे नया घड़ा में डालते हैं। उसके ऊपर साल पेड़ का एक टुकड़ा अंगार और लाल मिर्चा डालते हैं। इस प्रक्रिया के बाद घड़ा को रूङ पत्ता से ढँकते हैं।

सातवाँ दिन में हड़िया पक जाता है। सातवाँ दिन सुबह से ही लुकु-लुकुमि ततङ का इन्तिजार करते हैं। इन्तिजार करते सारा दिन गुजर जाता है। शाम होती है, रात होती है। पूर्णिमा का चाँद निकल आता है। लेकिन 'ततङ' (सिंङबोंगा) नहीं आता है। इससे लुकु-लुकुमि को ततङ के प्रति काफी नाराजगी होती है।

चोंरट का पका हुआ हड़िया का सुंगध लुकु-लुकुमि के मन और दिल को मोह लेता है। इन दोनों के दिलो-दिमाग में हड़िया पीने की तीव्र इच्छा होती है। 'जोअर' कितन के इस कविता से भी इच्छा बोध का झलक मिलता है-

चेंरो-बेरो रटा-पटा
सगः चउलि पटा-पुटु
बइ डियड. उपुड़ सोअन हड़् सिविल गे ।1।
नमा चटु चला चिपे
तरल निरल डियड.चिपे
डिन्डा जिबोन हया जिबोन नु-नु संग गे ।2।

लुकुमि हड़िया बनाती है। हड़िया पीने के लिये कोरकोट्टा पत्ता का दोना बनाती है। लुकु चिंगड़ी मछली, केंकड़ा और मोरोः ए लुपुः का चंकड़ा बनाता है। पीने से पहले लुकु धरती माँ के नाम से 'हड़िया' का भोग चढ़ाता है। इसके बाद लुकु लुकुमि हड़िया पीते हैं।

लुकु-लुकुमि का हड़िया पीने का सजीव-चित्रण 'जोअर' पुस्तक के निम्न कविता में भी देखने को मिलता है-

लुकु-लुकुमि नु जेम्बेड़्
सगः रसि जि जेम्बेड
लुकु लुकुमि नु अंजेड उपुङ डिपङ दः।
सपा मेड बोड़ा पसिर
पकोड़ो होमोहो गिसिर पसिर
चिरू चरिः गंडि परोम सएड मिडेन जन।

निदा अङ ओः चिरगल बनोः
गंडि एसेड केयल बनोः ।
बा होमोहो सएड मिडेन जन।
मिसिया बारिया केयल बनोः
गिउः गमं उडु. बनोः
लिटिब सोंगे दः जं एट पसिर लेन।

हड़िया पीते-पीते लुकु लुकुमि को नशा हो जाता है। आँखें लाल हो जाती है। दोनों का शारीरिक एवं मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। लुकु लुकुमि को और लुकुमि लुकु के शरीर को स्पर्श करते हैं। ये दोनों एक दूसरे के शरीर को छूते हैं। लुकु-लुकुमि के युवा शरीर में 'सेक्स' का संचार होता है। सेक्स की भावना की जागृति होती है। भाई-बहन का ख्याल को भूल जाता है। सोते समय बीच में रखे जाने वाले चिरू चरिः को भी रखना भूल जाता है। फलस्वरूप लुकु-लुकुमि का शारीरिक मिलन होता है। दो तन, दो बदन, दो दिल, दो मन, दो सांसे एवं दो धड़कने एक हो जाते हैं। मानव सृष्टि का बीज लुकुमी में बुनीत होता है।

सुबह, जब लुकु-लुकुमि का नशा खत्म होता है, तो अपने भूल का एहसास होता है। पाश्चाताप होता है।

इस पुनीत घटना से लुकु-लुकुमि को सृष्टि का ज्ञान होता है। संसारिक जीवन का ज्ञान होता है। माँ का ज्ञान होता है। प्रकाश और अंधकार का ज्ञान होता है।

इस पुनीत घटना से लुकुमि गर्भ धारण करती है। ततड. का खुशी का ठिकाना नहीं रह जाता है।

इस पुनीत घटना को - 'लुकु-लुकुमि' प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमा के दिन 'मागे' के रूप में याद करते हैं। एक पवित्र घटना के रूप में याद करते हैं। मागे, पोरोब, के रूप में मनाते हैं। पवित्र पर्व के रूप में मनाते हैं।

आज भी लुकु-लुकुमि की संतान 'हो' लुकु-लुकुमि की पुनीत घटना को, पुनीत शारीरिक मिलन को प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमा के दिन - 'मागे' के रूप में याद करते हैं। इसे 'मागे-पोरोब' के रूप में मानाते हैं। 'मागे' को 'मागे-पोराब' को पवित्र पर्व के रूप में मनाते हैं। मागे-पोराब के दिन मागे-पूजा स्थल 'जएरा' में मागे पूजा के समय लुकु-लुकुमि के यौनी का नाम- 'लोः ए' ओर 'रूजी' बोलता है।

'मागे' शब्द की पवित्रता एवं 'मागे-पोराब' की औचित्य की झलक 'हो'

आदिवासी के 'मागे लोक गीत' में भी देखने को मिलता है –

(क) नेदेर बुरू चेतन रे
नेदेर बुरू लोंगोंर रे
जिकि चिना सरसन्डि मन्डा रकब लेड़ को।
चिनः अपुइ जिकि
चिनः अपुइ सरसन्डि
एतेः देरं बले रे बारेञ चनागा मन्डा रकब लेड़।।कों।।

(ख) बुरूञ नेल में बुरू रे बं में
बेडाञ नेल में बेड़ा रे बं में
बुरू कुटि रेमा चि बारेञ बेडा लोंगेर रे ।।कों।।
कना नपुइ बुरू गो चुटि
कना नपुइ बेड़ा गो लोंगोर
बुरू जा चुटि दिरिजा उम्बुल, उम्बुल सुबा रेम ।।कों।।
मगेदो बेटा लेना बारेञ
मगेदो बेटा लेना बारेञ
दिने मुन्डि बोचोर मुन्डि मागे दो बेटा लेन ।।कों।।
दुरङ नलङ में मिसिञ
दुरङ नलं मे
रेंयो, रेयों मिसिञ दुरं नलं में ।।कों।।
नोरोङ नलङ में बारेञ
नोरोङ नलङ में
मड़को बिर रूतु बारिञ नोरोङ नलङ में ।।कों।।
मागे दो रूआड़ा बारेञ
मागे दो रूआड़ा
लतारे दिसुम ते बारेञ मागे दो रूआड़ा ।।कों।।

=o=o=o=

10. हो आदिवासी और हड़िया

हड़िया : एक परिचय

(क) हड़िया का शाब्दिक अर्थ

हो आदिवासी हड़िया को - 'डियाङ' कहते हैं। डियाङ् का शाब्दिक अर्थ होता है, - डि = निवास स्थान, धरती, पृथ्वी आदि होता है तथा 'याङ्' का अर्थ होता है, - माँ, माता आदि। अर्थात् वह निवास स्थान या धरती, जहाँ सृष्टि की माँ निवास करती है। सृष्टि मानव निवास करता है।

दूसरे शब्दों में - वह स्थान या धरती, जहाँ सृष्टि की माँ की कोख से सृष्टि का बीज पनपता है। सृष्टि का बीज सृष्टित होता है। पुष्पित होता है। फलित होता है तथा नष्ट होता है।

(ख) सम्बोधन - हो आदिवासी हड़िया को 'डियाङ्' के अलावे 'इलि' तथा 'बोड़ोः ए' आदि नाम से भी सम्बोधित करते हैं।

वर्त्तमान में पढ़े-लिखे 'हो' युवक-युवतियाँ हड़िया को, - 'राइस-वियर' की संज्ञा से भी अभिहित करते हैं।

''हड़िया'' एक पेय पदार्थ है, जो चावल, ज्वार, बाजरा, मक्कई, मड़वा, गोंदली, कोदो तथा गेहूँ जैसे विभिन्न जनोपयोगी खाद्यानों से, जिसमें विभिन्न जंगली जड़ी-बुटियों का चूर्ण मिलाकर विशेष प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है।

छोटानागपुर, संथालपरगना क्षेत्र के मुण्डा संथाल, उराँव, खड़िया, बिरहोड़ तथा बृजिया जाति के लोग चावल के अतिरिक्त मडुआ, गोंदली तथा कोदो का हड़िया बनाते हैं, जबकि 'हो' समुदाय में चावल का हड़िया ही अधिक प्रचलित है। प्राचीन काल में हो लोग जामुन, डुमर, पीपल आदि फलों का हड़िया बनाते थे।

हड़िया की उत्पति और सृष्टि कथा

सृष्टि काल की बात है, जब ततङ् (सिंङबोंगा) धरती, हवा, पानी तथा आकाश को बनाता है। धरती, पानी और आकाश में रहने वाले जीव-जन्तुओं की सृष्टि करता है। सूरज, चाँद और सितारों का निर्माण करता है। हो-लोक कथा के अनुसार, मानव सृष्टि के क्रम में- ततङ् (सिंङबोंगा) मिट्टी के दो मानव आकृति का मूर्ति बनाता है। इन मानव आकृतिक मूर्ति में प्राण डालता है। इस तरह दो आदि

मानव की सृष्टि करता है। एक का नाम लुकु रखता है और दूसरे का नाम लुकुमि। लुकु और लुकुमि भाई-बहन थे। कालक्रम में दोनों यौवन को प्राप्त कर लेते हैं। समय, मौसम और परिस्थिति के अनुकूल दोनों शादी कर लेते हैं। लुकु और लुकुमि की शादी हुए चौदह साल बीत जाता है। उसकी कोई संतान नहीं होती है।

एक दिन ततङ समस्त सृष्टि को देखनें निकल पड़ता है। वह देखता है कि सृष्टि में असुरों की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई है। वहीं जल, थल तथा नभ में रहने वाले जीव-जन्तुओं की संख्या में भी आशातीत वृद्धि हुई है। घुमने के क्रम में ही ततङ् लुकु और लुकुमि के झोपड़ी में पहुँचता है। ये दोनों ततङ को बहुत धूमधाम से स्वागत करते हैं। ततङ बहुत खुश होता है, लेकिन लुकु और लुकुमि की कोई सन्तान न देखकर ततङ मन ही मन बहुत दुःखी होता है। और वहाँ से ततङ दुःखी मन से चला जाता है। ततङ काफी चिन्तित होता है। वह सोचने लगता है कि संसार के सभी जीव-जन्तुओं की संख्या में वृद्धि हो रही है, लेकिन मानव संख्या में कोई वृद्धि नहीं हो रही है। लुकु और लुकुमि की शादी के चौदह वर्ष हो चुके हैं, फिर भी दोनों निःसन्तान हैं। अखिर इसका क्या कारण है?

एक दिन अचानक, ततङ लुकु-लुकुमि के झोंपड़ी में आधी रात को आता है और लुक-छिपकर झोपड़ी में झांककर देखता है। वहाँ ततङ देखता है कि - लुकु और लुकुमि अलग-अलग गहरी नींद में सोए हुए हैं और दोनों के बीच में चिरु चरिः रखा हुआ है। यह देखकर ततङ आश्चर्य चकित होता है और लुकु-लुकुमि की सन्तान नहीं होने के कारणों को समझ जाता है। यह दृश्य देखकर वहाँ से ततङ लौट आता है।

एक दिन ततङ पुनः घुमते-फिरते लुकु-लुकुमि के झोपड़ी में जाता है। इसका दोनों तहे दिल से स्वागत करता है। इस बीच तीनों में काफी रोमांचक बातें होती हैं। मजाक ही मजाक के क्रम ततङ लुकु-लुकुमि से कहता है- हे! लुकु और लुकुमि? तुम दोनों हमको खाना खिलाते हो। फल-फूल खिलाते हो। कन्द-मूल खिलाते हो। लेकिन तुम दोनों हमको एक दिन भी 'डियाङ' नहीं पिलाते हो? बोलो, तुम दोनों के यहाँ कब 'डियाङ' पीने आऊँगा? ततङ का यह बात सुनकर लुकु-लुकुमि एक दूसरे को देखने लगते हैं। इन दोनो को समझ में नहीं आ रहा था कि ततङ किस पेय पदार्थ की बात कर रहा है। तब लुकु-और लुकुमि सन्देह और आश्चर्य से ततङ से पूछता है। हे ततङ? 'डियङ' कैसा होता है? कहाँ मिलता है? हम दोनों को 'डियङ' के सम्बंध में कोई जानकारी नहीं है। इन दोनों का सवाल सुनकर

काफी देर के बाद ततङ जवाब देता है- हे लुकु और लुकुमि? सुनो 'डियङ' एक स्वच्छ एवं निर्मल पेय पदार्थ होता है। इसमें सृष्टि की अपार शक्ति निहित है। यह कहीं नही मिलता है। इसको बनाना पड़ता है। यह 'संगः' के बीज से बनता है। धान, कोदो, गुड़ुलु आदि खाद्य पदार्थ तथा विभिन्न फल-फूलों से भी बनता है।

ततङ लुकु और लुकुमि को 'डियङ' बनाने का विधि भी बताता है। लुकु और लुकुमि को 'सगः' एकत्र करने और उसके दानों को साफ कर बीज निकलने तथा बीज को पकाने की विधि विस्तार से बताता है। इन दोनों को जंगल का नाम बताता है, जहाँ जड़ी-बूटी मिलता है। उन जड़ी-बुटियों को भी नाम बताता है, जिससे 'रानु' बनता है तथा रानु बनाने की विधि भी बताता है। ततङ, लुकु और लुकुमि को सात दिन में हड़िया तैयार होने तथा उससे 'रसि' नामक रस निकलने तथा हड़िया से सुगन्ध निकलने की ओर भी संकेत करता है। अन्त में ततङ, लुकु और लुकुमि से यह कहते हुए वहाँ से विदाई लेता है कि - ''मैं तुम दोनों के घर पुनः सातवाँ दिन आऊँगा और हमलोग मिलकर 'डियङ' पियेंगे, नाचेंगे, गाएंगे तथा खुशी मनाएंगे।''

लुकु और लुकुमि, ततङ. के बतलाये विधि के अनुसार- 'रानु' बनाता है। खेत, मैदान आदि से संगः (चोंरट) काट कर लाता है। उससे दाना निकलता है और कूट-कूट कर बीज निकलता है। सगः के बीज को पकाकर एक मिट्टी के घड़ा में 'डियङ' बनाता है। सातवाँ दिन हड़िया तैयार हो जाता हैं लुकु और लुकुमि बहुत खुश होते हैं। ये दोनो सुबह से ही ततङ् के आने का इन्तजार करते हैं। शाम होती है। रात होती है, लेकिन ततङ नहीं आता है। जब इन्तिजार करते-करते लुकु थक जाता है, तो वह लुकुमि से कहता है - हे लुकुमि? बहुत रात हो गई है अब ततङ नहीं आयेगा 'डियङ' तैयार हो गया है। देखो, इसके रस को। कितना निर्मल और स्वच्छ है। इसका सुगन्ध कितना खुशबुदार है। मेरा तो जी लालच रहा है, पीने को। तभी लुकुमि जवाब देती है,- हाँ लुकु? यह तो बहुत स्वच्छ और पवित्र लग रहा है। इसका सुगन्ध बहुत ही मतवाला लग रहा है। हमको भी पीने का जी कर रहा है।

लुकुमि, मिट्टी के घड़ा में डियङ बनाती है और इसके बाद कोरकोटा पत्ता का सात दोना बनाती है। झोपड़ी के एक कोना में कोरकोटा का सात दोना को बिछाती है। इन दोनो में लुकु, ततङ के नाम से 'डियङ' डालता है। जगंल-पहाड़ के बुरू-बोंगाओ के नाम 'डियङ' डालता है। नदी, नाला, झरना, के नागे एराओं के नाम 'डियङ' डालता है।

लुकु और लुकुमि कोरकोटा के पत्ता में बैठता है। लुकुमि, लुकु को कोरकोटा पत्ता के दोना में हड़िया देती है और अपने भी एक दोनों में हड़िया लेती है। लुकु अपना दोना का थोड़ा सा हड़िया लुकुमि के दोना में डालता है और लुकुमि भी अपना दोना का थोड़ा सा हड़िया लुकु के दोना में डालती है। इसके बाद दोनों एक दुसरे को 'जोअर' करते हैं और दोनों हड़िया पीते हैं। हड़िया पीने के बाद धीरे-धीरे दोनो को नशा होने लगता है । आँखे लाल होने लगती हैं। मुँह बड़बड़ाने लगता है। शरीर लड़खड़ाने लगता है। शरीर के अंग-अंग में, सिहरन होने लगता है। नशा की अवस्था में दोनों एक दूसरे को प्यार, प्यास और वासना की नजर से देखने लगते हैं। हड़िया पीते-पीते आधी रात होती है। लुकु और लुकुमि एक साथ सोते हैं।

तन और मन-मस्तिक में वासना की जागृति होती है होश-हवाश खो देते हैं और भाई-बहन का पवित्र रिश्ता टूटकर, दो मन, दो तन, दो साँसे, दो धड़कन एक हो जाते हैं। मानव सृष्टि का बीज छिड़क जाता है। जैसा कि इस कविता में झलक मिलता है- निदा अङ ओः चिगल बनोः

गड़ि तुकु केयल बनोः
बा होमोहो सएड लिटिब सएड़ मिडेन जन।
मिसिया बारिया केयल बनोंः
गियुः गमड. उडुः बनोंः
लिटिब सोंगे दः जं एर पसिर जन।
अरे चन्डुः लयः लुयु :
होन देरड. सयः सुयुः
गड़ा गुडु रिमिल दोकोल होन होबा लेन।

इस तरह संसार में मानव का सृष्टि होता है।

जोअर - हो काव्य संकलन- कवि - कमल लोचन 'कोड़ाह'

इस तरह संसार में मानव का सृष्टि होता है। हो आदिवासी समाज हड़िया को कई दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण मानता है जिसका उल्लेख करना आवश्यक है :-

(1) हड़िया का सांस्कृतिक महत्व
(2) हड़िया का सामाजिक महत्व
(3) हड़िया का आर्थिक महत्व
(4) हड़िया का स्वास्थ्यात्मक महत्व
(5) हड़िया का मनोरंजनात्मक महत्व

(1) हड़िया का सांस्कृतिक महत्व

पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि हड़िया हो आदिवासी के सृष्टि से जुड़ा-पवित्र, स्वच्छ एवं निर्मल तथा अति लोकप्रिय पेय पदार्थ है। हड़िया हो आदिवासियों के धर्म, संस्कृति पारम्परागत रीति-रिवाज का तथा सिड.बोंगा और बोंगाओं को अर्पण करने का पवित्र पेय पदार्थ है। आदि काल से हड़िया हो आदिवासियों के जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है।

यह सर्वविदित है कि हड़िया का हो आदिवासी समाज के सांस्कृतिक व धार्मिक जीवन में एक विशिष्ट महत्व है। जिस प्रकार हिन्दुओं में पूजा-पाठ के उपलक्ष और कई अवसरों पर गंगा-जल या दूध का अर्घ्य दिया जाता है। उसी प्रकार हो आदिवासी समाज में भी सिड.बोंगा तथा बोंगाओं और पुरखों के आत्माओं का पूजा-आराधना करते समय हड़िया,के बिना पूजा-पाठ या आराधना ही अधूरा समझा जाता है।

हो लोगों का मानना है कि सिंड.बोंगा एवं बोंगा, जो निराकार है वे हड़िया का भोग स्वीकार करता है। हड़िया के बिना सिंड.बोंगा एवं बोंगा, को, की जाने वाली जोअर, गोहरि, प्रार्थना, विनती एवं पूजा आराधना अधूरा माना जाता है। इसलिये मगे, बा, हेरोः जोमनमा आदि व्योहारों तथा अनुष्ठानों एवं संस्कारों में सिंड.बोंगा तथा बोंगाओं के नाम एवं पुरखों के नाम हड़िया का अर्पण करना अनिवार्य है। यदि इन अवसरों पर सिंड.बोंगा एवं बोंगाओं तथा पुरखों के नाम हड़िया को भोग नहीं चढ़ाया जाता है, तो वे मानव को, पालतू जानवरों को तथा फसलों को हानि पहुँचाता है। गाँव में हैजा, चेचक आदि महामारी फैलता है। पालतू जानवरों को जंगली जानवर खा जाता है तथा बिमारी फैलता है। वर्षा नहीं होती है। गाँव में, देश में अकाल होता है। गाँव में तरह-तरह की विषान्ति आने लगता है।

इस तरह हड़िया हो आदिवासियों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य पहलू है। इसके बिना उनका धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन ही अधूरा रह जाता है।

2. हड़िया का सामाजिक महत्व

हड़िया का हो, लोगों के सामाजिक जीवन में एक विशिष्ट स्थान है। हड़िया, आपसी, भाई-चारे, पारिवारिक एकता और सामाजिक सौहार्द्र कायम करता है। हो, के पर्व त्योवहारों जैसे- मगे, बा, बताउलि, हेरोः जोमनमा, शादी-व्याह तथा विभिन्न संस्कारों एवं अनुष्ठानों में घर-परिवार, गाँव, समाज के लोग दूर-दराज के

रिस्ते-बन्धु तथा अतिथि आते हैं। ये सभी मिल बैठकर एक साथ खाते हैं। पीते हैं। नाचते हैं। गाते हैं। इस तरह हड़िया से सामाजिक बन्धुत्व बढ़ता है। देशज और समाज के लोगों के साथ प्रेम और बन्धुत्व की भावना में वृद्धि होती है।

पर्व-त्योहारों, शादी-व्याह एवं अन्य सामाजिक रस्म, अदायगी के अतिरिक्त अतिथियों के सम्मान-सत्कार और आभार स्वरूप हड़िया का व्यवहार किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति द्वारा पर्व-त्योवहारों और शादी-व्याह के अवसरों में रिस्ते, बन्धुओं को घर परिवार तथा समाज के लोगों को हड़िया पीने के लिये नहीं दिया जाता है या हड़िया पीने के लिए घर नहीं बुलाया जाता है तो उसका समाज में, परिवार में तथा बन्धुओं में शिकायत होती है। अनादार होता है। उस व्यक्ति को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। उसे बहुत गरीब और कंजूस समझा जाता है।

अतः सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक-संस्कार तथा अनुष्ठानों आदि अवसरों पर हड़िया का होना परम आवश्यक है। हड़िया के बिना उक्त अनुष्ठानों का महत्व ही कम हो जाता है। अतः हड़िया की अपनी अलग पहचान तथा अस्तित्व है। इसलिये 'हो' आदिवासी के लोग हड़िया को अपना जीवन का एक अंग मानता है।

3. हड़िया का आर्थिक महत्त्व

'हो' समाज में हड़िया का धार्मिक महत्व बहुत अधिक है। हो के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में विश्लेषणात्मक शक्तियों के रहने के बावजूद, आज भी हड़िया उनके दैनिक जीवन के अदान-प्रदान की सहयोगिता का प्रमुख वस्तु बनी हुई है।

(1) हो, अपने खेत जोतने तथा धान बोने के समय गाँव के लोग सहयोग के रूप में एक साथ हल का व्यवहार करते हैं। इसी तरह स्त्रियाँ भी एक साथ खेतों में काम करती हैं। खेतों में डेला फोड़ती हैं। धान रोपनी करती हैं। घास निकौनी करती हैं तथा धान कटनी करती हैं और खेतों से खलिहानों में लाती हैं। इसके एवज में कोई मजदूरी नहीं दी जाती है, बल्कि सहयोग के एवज में हड़िया पीला दिया जाता है। यह हो लोगों के जीवन की महत्व पृष्ठभूमि है।

(2) उसी तरह लोग घर छावनी करने में, खपरैल बनाने तथा पकाने में तथा शव को दफनाने हेतु पत्थर खींच कर लाने तथा पत्थर गाड़ने आदि कार्यो में गाँव तथा समाज के लोग सहयोग करते हैं। इन सहयोगों के एवज में भी सहयोग करने वालों को मजदूरी नहीं दिया जाता है, बल्कि इन सहयोग करने वालों को हड़िया पीलाया जाता है। खाना खिलाया जाता है। यह सहयोगात्मक कार्य हो लोगों में सदियों

से चला आ रहा है, जो वर्त्तमान वैज्ञानिक तथा आधुनिक युग में भी संजो कर रखा गया है।

(3) आज सिंहभूम के 80 प्रतिशत 'हो' लोग गरीबी रेख के नीचा का जीवन जी रहे हैं । सदियों से सुखी-सम्पन जीवन जीने वाला हो आदिवासी आज दाने-दाने को मुँहताज है। फलस्वरूप हाटों में बाजारों मे, मेला में, मुर्गा-पाड़ा में तथा घरों में हड़िया बेचने के लिये मजबूर है। हड़िया बेचकर जो 20—25 रूपये का आमाद होता है, उससे घर-परिवार के लिये नमक, तेल, साबून, कपड़ा-लता तथा दैनिक जीवन के अनिवार्य वस्तुओं को खरीदता है।

हड़िया बेचना हो आदिवासी का आर्थिक उदेश्य नहीं है और न ही जीवन का पेशा ही। यह मात्र एक संयोग है,- 'निर्धनता' और 'गरीबी का'। स्वतंत्र जीवन जीने वाला सिंहभूम के हो आदिवासियों को हड़िया बेचने पर लज्जा और शर्म तो आती है, लेकिन पापी पेट तथा तन ढकने एवं जीवन की गाड़ी को चलाने के लिये सृष्टि से जुड़ा 'हड़िया' जैसा पवित्र; निर्मल, तथा आदि पुरुष-लुकु-लुकुमि का देय अमुल्य रत्न एवं पारम्परिक रीति-रिवाज पवित्रता को बेचने के लिये मजबूर है।

(4) हड़िया का स्वास्थ्यात्मक महत्व

हड़िया के तमाम गुण-दोष के तथ्यों पर दृष्टिपात करने से स्थिति काफी हद तक स्पष्ट होती है कि संसार की कोई भी वस्तु अपने आप में बुरी नहीं होती है। किसी भी वस्तु, खाद्य पदार्थ का अच्छा या बुरा होना मानव उपभोग पर निर्भर करता है। उसके उपभोग की बात पर निर्भर करता है। यदि एक निश्चित मात्रा में किसी खाद्य-पदार्थ एवं पेय-पदार्थ का उपभोग किया जाता है, तो शरीर एवं स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होता है। यदि इन पदार्थो को निश्चित मात्रा से अधिक उपभोग किया जाता है, तो शरीर, मस्तिष्क एवं स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। इसी परिक्षेप में यदि मौसम के अनुकूल तथा आवश्यकता के अनुसार, उचित मात्र में, उचित समय पर एवं उचित स्थान पर हड़िया का व्यवहार किया जाय, तो हड़िया निश्चित रूप से एक आचूक औषधि है। एक सिद्ध पेय पदार्थ है। दवा है जो शरीर तथा दिलों-दिमाग के लिये रामवाण है।

हड़िया के निश्चित मात्रा में तथा नियमित सेवन से निम्न लाभ होता है :-

1. शारीरिक शक्ति एवं सौन्दर्य में वृद्धि

'हो' आदिवासी कठोर शारीरिक परिश्रम करते हैं। जंगल एवं पहाड़ी क्षेत्रों में रहने के कारण कृषि, पशुपालन शिकार तथा मजदूरी एवं दैनिक जीवन के कार्यो में भी कठिन शारीरिक परिश्रम से अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इसके बावजूद हड़िया के निश्चित मात्रा तथा सामायिक एवं आवश्यकता के अनुसार नियमित सेवन से इनके शरीर काफी सुडोल और ह्रष्ट-पुष्ट होते हैं तथा काफी शारीरिक शक्तिशाली वाले होते हैं। शरीर एवं चेहरा में प्रकृति की वास्तविक चमक और सौन्दर्य होता है। इसीलिये कोलोनल डाल्टन ने - 'सिंहभूम गेजेटर्स में उल्लेख किया है कि -'सिंहभूम के 'हो' मुण्डा, संथाली एवं अन्य कोलेरियन दक्षिणी परगना एवं लोहदगा जिला के लोग भूमिज के अपेक्षा अधिक शारीरिक शक्ति के होते हैं।"

2. विभिन्न बिमारियों एवं रोगों का अचुक दवा

(क) **गैसटिक की अमूल्य दवा** – हड़िया के नियमित सेवन के कारण 'हो' लोगो का पेट सदा साफ और निरोग रहता है । जिसके कारण ये लोग गैसटिक जैसे रोगों से परिचित नहीं हैं।

(ख) **डायबिटीज बिमारी से आराम** – हड़िया पीने से पेशाब बराबर होता है तथा पेशाब साफ और स्वच्छ होता है, जिससे हमेशा मूत्राशय भी साफ रहता है। फलस्वरूप डायबिटीज जैसे- संघानिक रोगों से बचने के औषधि के रूप में हड़िया का व्यवहार किया जाता है।

(ग) **मलेरिया रोग की रोकथाम** – हड़िया का 'रसि' पीने से मलेरिया जैसी बिमारी व रोग, नहीं के बराबर होता है। हड़िया के रसि में अधिक मात्रा में अलकोहल तथा जड़ी-बूटी का मात्रा रहने के कारण मलेरिया मच्छरों से शरीर में पनपे कीटाणुओं की रोक-थाम एवं मार डालने की शक्ति होती है। यदि मलेरिया से पीड़ित व्यक्ति असली एवं स्वच्छ हड़िया-रसि पीता है, तो वह ठीक हो जाता है। यदि हड़िया रसि में चार-पाँच लहसुन का दाना चूर्ण कर तथा मिलाकर पीने से मलेरिया से ग्रसित व्यक्ति स्वस्थ्य हो जाता है।

(घ) **पीलिया (जोंडिस) बीमारी की अचूक दवा** – हड़िया पीलिया (जोंडिस) बीमारी की अचूक दवा है। जो व्यक्ति नियमित रूप से हड़िया का सेवन करते हैं, उस व्यक्ति को पीलिया रोग नहीं होता है। यदि किसी व्यक्ति को पीलिया हो जाता है और वह प्रतिदिन नियमित रूप से तथा उचित मात्रा में सेवन करता है, तो

उसकी पीलिया बीमारी खत्म हो जाती है वह निरोग तथा स्वस्थ्य हो जाता है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि हो लोग गोड़ा एवं बेड़ा खेत के धान का चावल एवं पुराना धान के चावल ही हड़िया बनाने में अधिक व्यवहार करते हैं। गोड़ा धान का चावल मोटा एवं हल्का लाली किस्म का चावल होता है, जिसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। इस चावल से बना हड़िया पीलिया जैसा खतरनाक रोग से बचने के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

(ड.) **लू की अचूक दवा** – पीलिया बिमारी की तरह ही "हड़िया" 'लू' की अचूक दवा है। हो आदिवासी चिलचिलाती धूप में खेतों में काम करता है। खेत बनाता है। हल जोतता है। धान बोता है। खलिहान में काम करता है। चिलचिलाती धूप में महुआ चुनता है। केन्दू पत्ता तोड़ता है। केन्दू और चांहर इक्कठा करता है। शिकार करता है। इसके बावजूद हो लोगो को 'लू' नही लगता है। इसका एक मात्र कारण हड़िया का सेवन करना है। शायद इन कारण से हो आदिवासी में किसी व्यक्ति को 'लू' से मरने क़ा कोई रिवाज नहीं रहा है।

(च) **बाल का काला तथा आँख का रोशनी का बना रहना** –'हो' आदिवासी सदियों से हड़िया पीता आ रहा है। वर्त्तमान में भी नियमित रूप से हड़िया पी रहा है। ऐसा हो लोगों का विश्वास है कि हड़िया का नियमित सेवन करने के कारण ही हो-आदिवासियों का बाल सदा काला रहता है।

आपको ज्ञात हो कि हो लोगों का आँखों की रोशनी अच्छी बनी रहती है। हो लोगों में आँख का अन्धापन की विमारी नहीं के बराबर होता है। बुढ़ापा में भी आँखों की रोशनी की स्वच्छता बनी रहती है। चाश्मा का व्यवहार करने का रिवाज तो हो लोगों में है ही नहीं। शहरों में रहने वाले हो-लोगों में आँखों की वीमारी पनपता नजर आ रहा है। अतः हो लोगों का यह भी विश्वास है कि, – "हड़िया के सेवन के कारण ही हो लोगों में चश्मा पहनने का नौबत नही आया है। और आँखों की रोशनी की स्वच्छता बना हुआ है।"

3. दीर्घ आयु की विश्वासता

आदिकाल में आदिमानव-लुकु और लुकुमि एवं उनके वंशज हो आदिवासी हड़िया का व्यवहार जनसंख्या-वृद्धि तथा दीर्घ आयु के लिये औषधि के रूप में करता था। शायद इन कारणों से लोग 120 से 135 वर्षों तक जीवित रहा करते थे।

हो लोगों का कहना है कि – 'हड़िया' सात प्राकर का जंगली जड़ी-बुटियाँ

मिलाकर बनाया जाता है। शायद जंगली जड़ी - बुटियों के बने हड़िया के सेवन के कारण ही लोगों का दीर्घ-आयु का कारण हो सकता है।

4. हड़िया का मनोरंजनात्मक महत्व

यह सर्वविदित है कि आदिवासी धरती का प्रथम भुमि-पुत्र हैं, जिसने हजारों हजार वर्षों तक घनघोर जंगलों में पहाड़ों में, रहता आ रहा है। बनैला वा खतरनाक जंगली जानवरों तथा विषैला सांप-बिच्छुओं के बीच जीवन निर्वाह करता आया है। चिलचिलाती धूप, घनघोर वर्षा और कड़कती ठंड के सहे तले जीवन निर्वाह करते आ रहा है। जंगलों के, पहाड़ों के पेंड़-पौंधों को काटकर, साफ कर नदी-नाला, गढ़ा-डीपा को समतल कर खेत बनाया है। मैदान बनाया है। गाँव बसाया है। शहर बसाया है। इसके लिये कठोर शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम करना पड़ा है। जो वर्त्तमान में भी आदिवासियों को करना पड़ रहा है। इस कठोरात्मक कार्यो को करने के पीछे एक अद्‌भूत शक्ति रही है, और वह है, - 'हड़िया'। 'हड़िया' वह दवा है, वह शक्ति है, वह जादू है तथा मनोरंजन का वह साधन है - "जिसने आदि समाज को, असभ्य मानव को, वर्त्तमान रूप में, वर्त्तमान सभ्य समाज में, वर्त्तमान रूप में, वर्त्तमान सभ्य समाज में, वर्त्तमान वैज्ञानिक काम में, लाने का अपार शक्ति रही है।"

हो आदिवासी पर्व-त्योवहारों में, रस्म-रिवाजों में तथा किसी अनुष्ठानों के शुभ अवसरों पर हड़िया पीते हैं। हड़िया पीकर लोग नगड़ा, मांदर बजाकर, बांसुरी बजाकर तथा नाच-गानकर मनोरंजन करते हैं।

इतना ही नहीं, हड़िया में मनोरजन की कौन सी ऐसी शक्ति है, जिसको पीकर लोग पर्व-त्योवहारों में, शादी-व्याह में तथा रस्म-रिवाजों के अवसरों पर सप्ताहों, दिनों तक रात और दिन जागता है। नाचता है। गाता है। बजाता है, पर थकता नहीं है।

जब लोग खेतों में काम कर, शिकार कर तथा मजदूरी कर शाम को थका-मन्दा घर आता है और थकान दूर करने के लिए हड़िया पीते हैं, तब लोग थकान को भुलकर, अपने आपकों गुनगुनाने लगते हैं। बांसुरी बजाते हैं। बनम बजाते हैं। नगाड़ा और मान्दल बजाते हैं और अपने आपको खुशी से हिलाने लगते हैं। डोलने लगते हैं। मानो, वे स्वर्ग का आनन्द अनुभव करते हैं।

उक्त वर्णित संदर्भ में 'हो' लोगों का यह कथन कभी भुलाया नहीं जा

सकता है कि – "जिबोन दो मिन्डो बुड़बुडु:इ तना। नेनागे सोरोगा रेयः सुगड़ा सुन्दर दो। (जीवन एक नशा है। एक मधुशाला है यहाँ स्वर्ग का सुन्दर आनन्द है)"

हड़िया का पेय एवं खाद्य पदार्थ के रूप में व्यवहार

यह आश्चर्य की बात नही है, कि हड़िया का पेय एवं खाद्य पदार्थ के रूप में व्यवहार किया जाता है। हो आदिवासी सदियों से हड़िया का व्यवहार पेय एवं खाद्य पदार्थ के रूप में करता आ रहा है।

हड़िया का जलपान

हो आदिवासी समाज में, चाहे वह पुरुष हो, महिला हो, बच्चे हो, बुढ़े हो, जलपान के रूप में हड़िया का व्यवहार करते हैं।

खेतों तथा खलिहानों में काम करने वाले व्यक्ति को कार्यस्थल पर ही जलपान के रूप में हड़िया पहुँचा दिया जाता है। हड़िया के साथ चखना के रूप में साग या बुकनी आदि दिया जाता है।

पर्व त्योवहारों, संस्कारों तथा अनुष्ठानों के समय हड़िया का जलपान के रूप में देना तथा हड़िया का जलपान के रूप में लेना आवश्यक हो जाता है। इन अवसरों पर लोग अवसरों पर लोग आपस में मिल-बैठकर एक साथ सामूहिक रूप में हड़िया का जलपान करते हैं। जलपान के समय एक व्यक्ति-दो-तीन मटिया हड़िया पी जाता है।

हड़िया के साथ चकना का होना आवश्यक है। चखना में मुनगा-साग, गन्दरी साग, कोभी, चना, केसरी एवं मुली आदि साग का व्यवहार करते हैं। इसके अतिरिक्त मडुआ का रोटी तथा चना, अरहर, उरद, कुरथी, बोदी, तथा केसरी को सीझा कर चखना किया करता है।

मांस, सुखी मछली, कुरती का बुकनी, टमाटर का बुरदा, जंगली माटा एवं सिरालि साग का बुकनी, टमाटर, कुरकुट, छातु, रूगड़ा तथा बांस का सांदना हड़िया के साथ चखना, हो आदिवासियों को बहुत पसन्द है। ये चखना हो लोगों का प्रिय चकना (चखना) है।

(ख) भोजन के रूप में व्यवहार-हो लोग हड़िया का व्यवहार दो रूप में करता है-

(1) पेय पदार्थ के रूप में, (2) खाद्य पदार्थ के रूप में

(1) पेय पदार्थ के रूप में

हो आदिवासी, जो गरीब तबके के हैं, वे लोग दो-तीन मटिया हड़िया पीकर रात-दिन गुजार लेते हैं। गाँव-घर में सहयोग के रूप में खेतो में खालियानों में काम करने वाले को मजदूरी नहीं दी जाती है, बल्कि उसके एवज में हड़िया पीने को दिया जाता है।

साधारणतया धनी-मानी व्यक्ति हड़िया पीने का आदि है, वे भी कई दिनों तक हड़िया पीकर ही रह जाता है। ऐसे लोग भी हैं, जो सप्ताह, दो सप्ताह तक हड़िया पीकर रह जाते हैं। ये लोग नशा के रूप में नही, बल्कि जिन्दगी जीने के लिये पीते हैं।

(2) खाद्य पदार्थ के रूप में

जब हड़िया बनाया जाता है, तो उसके अवशेष निकलता है। हड़िया के इस अवशेष को 'मेरा' (माया) कहते हैं। इस मेरा को हो-लोग नमक और मिर्चा देकर खाते हैं। जिस तरह हड़िया पीकर लोग सप्ताह दो सप्ताह तक रह जाते हैं उसी प्रकार हो लोग मेरा (माया) खाकर महीनों रह जाते हैं। हो लोग हड़िया के साथ मेरा का चकना भी करते हैं।

हड़िया और अतिथि सत्कार

हड़िया हो आदिवासियों का सृष्टि से जुड़ा-पवित्र, निर्मल एवं स्वच्छ मादक पेय पदार्थ है। जब घर में कोई अतिथि आता है, तो आदि पुरुष लुकु के प्रतीक के रूप में उसका आदर-सत्कार हड़िया से किया जाता है।

हो लोग अपने घर पर आये अतिथि को पानी या चाय नहीं पीलाते हैं, बल्कि सर्वप्रथम अतिथि को पेय के रूप में पीने के लिये हड़िया देते हैं। अतिथि हड़िया अकेला नहीं पीता है अतिथि के साथ घर, परिवार एवं गाँव के लोग रहते हैं। ये लोग एक साथ हड़िया पीते हैं। हड़िया पीते समय ही, घर-परिवार के दुःख-सुख, हाल-चाल आदि का पता होता है।

जब घर पर हड़िया नहीं होता है तो गाँव के लोगों से मांग कर व्यवस्था किया जाता है या खरीद कर। इसके बावजूद, अतिथि का आदर-सत्कार हड़िया पीलाकर किया जाता है। यदि कारणवश अतिथि को पीने के लिये हड़िया नही दिया जाता है, तो वह समझता है कि मेरा कोई आदर-सत्कार नहीं किया गया है। उस घर

के लोग भी यह समझते है कि घर पर हड़िया नहीं रहने के कारण अतिथि का आदर-सत्कार बढ़िया से नहीं किया गया तो इससे आपसी संबंधों में दरार उत्पन्न होता है। कभी-कभी अतिथि का उचित आदर सत्कार नहीं करना आपसी संबंधों का भी टूट का कारण बनता है। इन कारणों से पर्व-त्योहारों में, शादी-विवाह में, किसी संस्कार तथा अनुष्ठानों के अवसरों पर अतिथियों को, मेहमानों को विशेष आदर सत्कार किया जाता है, - हड़िया से। हो आदिवासियों का यह कथन बिल्कुल चरितार्थ होता है कि - 'पालना कुटुम्ब को ओअः एञ् सेन् लेना। मन्डि - उतु क तेमा कको एमाड़िञ, डियड् जकेड मिडपुः कको एमाड़िञ? निमिन को होयोला?'

अतः हो आदिवासी में हड़िया अतिथि एवं मेहमानों को सत्कार करने का सर्वोत्तम आदि पवित्र पेय पदार्थ है।

हड़िया से हानि

पूर्व में ही उल्लेख किया जा चुका है कि - 'हड़िया एक अचूक औषधि है। इसका औषधि के रूप में निश्चित समय एवं निश्चित मात्रा में सेवन करने से मानव शरीर तथा जीवन के लिये अमृत का काम करता है। आदमी निरोग, स्वास्थ्य और दीर्घ-आयु होता है। आदमी इष्ट-पुष्ट होता है। यदि इसका बेसमय, बे मात्र तथा वे स्थान सेवन किया जाता है, तो शरीर के लिये कैंसर से भी ज्यादा खतरनाक रोग और जीवन के लिये नरक है।?

हड़िया से कई हानियाँ

(क) हड़िया का अत्यधिक सेवन करना मानव शरीर तथा मानव मस्तिष्क के लिये ठीक नहीं है। हड़िया के अत्यधिक सेवन से मानव मस्तिष्क की शक्ति-क्षीण हो जाती है। मानव शरीर के प्रकृति शक्ति का ह्रास तथा क्षीण होता है। फलस्वरूप शरीर में तरह-तरह के बीमारी पनपते हैं।

(ख) हड़िया का अत्यधिक सेवन करने से आदमी का नैतिक एवं चारित्रिक गुण का पतन होता है।

(ग) वर्त्तमान परिस्थिति में हड़िया हो आदिवासी समाज में एक कोढ़ और विसंगति का रूप ग्रहण कर चुका है। आज हड़िया अमृत तुल्य न होकर जहर सा हो गया है। दरअसल इसका अनुचित उपयोग का ही प्रतिफल है। आज आदमी हड़िया के अधीन हो गया है।

(घ) अत्याधिक हड़िया के सेवन से मन-मष्तिक में शैतान का बस होता है। आदमी अपना-पराया को भूल जाता है। अपने को संसार का सर्वोच्च महान् विद्वान और शक्तिशाली समझ बैठता है।

(ङ) हड़िया के अत्यधिक सेवन तथा नशा के कारण घर-परिवार के सदस्यों से झगड़ा-झंझट होता है। तरह-तरह के परिवारिक विवाद का उपज होता है। आपस में मन-मोटाव होता है तथा ताना-बाना परिवार बिखर जाता है। हो समाज में संयुक्त परिवार के टूट और एकल परिवार का निर्माण का कारण हड़िया ही है।

(च) आज हो आदिवासी समाज में हड़िया का सेवन दिनचर्या बन गया है। हड़िया पीने में अपना बहुमूल्य समय गुजार देता है। फलस्वरूप खेतों का काम समय पर नही करता है। धान बोनाई, कड़न, घास निकौनी, धान का खलिहानों में लाना तथा धान का मिसना आदि कार्य समय पर सम्पन्न नहीं होता है। इन कारणों से 'हो' आदिवासियों में गरीबी तथा भूखमरी असमान छूने लगा है। तन ढकने के लिये प्रर्याप्त वस्त्र नहीं है। बैठने-सोने के लिये खाट्-एवं चटाई का भी अभाव है। बना-बनाया मकान टूटा जा रहा है। बरसात में छतों से पानी छूता है। तेल, साबून, नमक तक नहीं रहता है, घर पर। यह सब हड़िया का ही कमाल है।

(छ) हड़िया की बुरी आदत - 'हो को, हो परिवार को, गाँव को, हो समाज को दूषित किया है तथा कर रहा है। आज हड़िया ने। हो आदिवासी समाज में गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा तथा बेरोजगारी को जन्म दिया है। गरीबी के कारण भुखमरी एवं कपड़े के अभाव में बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं। वे घर में बेकार रहते हैं। गाय, बैल, बकरी चराते हैं। आज हालात् यह है कि युवक-युवती एवं बुजूर्ग, दंगार तथा रेजा-कुली का काम करता है। मजदूरी करने राज्य से बहार जाता है। जहाँ जानवरों का जीवन जीने को मजबूर होता है तथा वहाँ अपना इज्जत को भी गंवा देता है। इतना ही नहीं, प्रदेश जाने वाले हर रेजा-कुली अपने समुदाय के धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक-प्रकृति तथा पवित्रता को समूल नष्ट कर रहा है। इसका एक मात्र कारण हड़िया है।

(ज) हड़िया का अधिक सेवन करने से बुढ़ापा में दमा, कुकुर, खाँसी, हड्डी के जोड़ में दर्द आदि रोगों का शिकार होना पड़ता है।

हड़िया बेचना : एक सामाजिक अपराध है

हो आदिवासी में हो लोक कथा के अनुसार हड़िया की रचना मानव सृष्टि तथा मानव वंशवृद्धि करने के लिये आदि पुरुष लुकु-लुकुमि ने किया था। इसलिये हो आदिवासियों ने हड़िया को पवित्र, शक्ति एवं स्वास्थ्यवर्द्धक, बीमारी तथा रोंगो को दूर करने वाला अमृत तुल्य औषधि मानता है। अतः आज हड़िया हो के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग है। इसलिये हो आदिवासियों द्वारा आदिकाल से वर्तमान तक आदि पुरुष-लुकुमि, सिंङबोंगा, बोंगाओं, तथा पितृ आत्माओं को हड़िया का पवित्र पेय पदार्थ का अर्पण करता आ रहा है। हड़िया के बिना हो आदिवासी का कोई भी धार्मिक, सांस्कृतिक, समाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य तथा पर्व-त्योहार शादी-विवाह, संस्कार एवं अनुष्ठान का सम्पन्न होना सम्भव नहीं है।

यह जानते हुए भी आदि पुरुष लुकुमि द्वारा हो के वंशज के लिये सृष्टि पवित्र हड़िया को हो लोगों द्वारा ही खुलेआम - हाट- बजारों में बेचा जा रहा है। हड़िया की पवित्रता नष्ट हो रहा है। इतना ही नहीं, हड़िया बेचकर अपने ही समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन को धूमिल कर रहा है। अपनी पहचान और अस्तित्व को समाप्त कर रहा है। हड़िया के कारण ही अपनी पुरखों के जमीन-जायदाद को बेच रहा है।

हो आदिवासी समाज में हो लोगों द्वारा ही अपनी माँ-बहन, बहू-बेटियों से खुले हाट-बाजार तथा मेला में हड़िया बेचवाकर घर की इज्जत को बेचवा रहा है। जाति और समाज की मान-मर्यादा को बेच रहा है। जातीय महानता तथा प्रतिष्ठा को दूषित कर रहा है।

अतः समय की पुकार है कि आदिवासी हो समाज के लोगों द्वारा मिल-बैठकर समाज में हड़िया बेचने पर रोक लगाना चाहिए। हाट-बाजार, एवं राह-सड़कों पर हड़िया बेचने वाले तथा हड़िया पीने वाले व्यक्ति को समाज की ओर से कठोरात्मक सामाजिक दण्ड दिया जाना चाहिए। हो समाज द्वारा हो-क्षेत्र के सरजमीन पर किसी भी व्यक्ति को हड़िया बेचने का इजाजत नही दिया जाना चाहिए। सरकार द्वारा हड़िया बेचने के रोकथाम हेतु हो-क्षेत्र के लिये एक स्वतंत्र कानून बनाना चाहिए।

हड़िया के प्रति लोगों का धारणा

वर्त्तमान में लोगों का हड़िया का हड़िया के प्रति गलत धारण बन गई है।

कारण लोगों का हड़िया के प्रति दुर्गुण मानसिकता का शिकार होना है तथा इसके गुण-दोष से पूर्णतः अनभिज्ञता का होना है। आज अंग्रेजी और देशी शराब के प्रति लोगों का हड़िया की भांति गलत मानसिकता नहीं बन पाई है। हड़िया का आदिवासियों द्वारा सेवन करना भी लोगों की गतल मानसिकता बन गई है।

(क) आज लोग हड़िया को सारे दुर्गुणों की जाननी कहते हैं अतः आदिवासी समाज के लिये हड़िया अनावश्यक है।

(ख) हड़िया को लोग विष से तुलना करने में भी नहीं थकते हैं, जो पूरे समाज को कलुषित और दुषित किया हुआ है। हड़िया से समाज त्रस्त है। इससे युवा पीढ़ी, दिशाहीन एवं निरूद्देश्य है।

(ग) वर्त्तमान परिवेश में लोग हड़िया के अवगुणों के कारण हड़िया विहीन समाज की बातें भी करने लगे हैं।

(घ) अधिंकाश लोगों की धारणा है कि आदिवासी समाज में हड़िया का नशापन ही लोगों का अशिक्षा एवं गरीबी का कारण है।

हड़िया के प्रति एक सोच

मैं अक्षरशः मानता हूँ कि हड़िया एक नशा है। उसमें नशापन है और नशा एक अभिशाप है। मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। सृष्टि की हर अच्छी और बुरी चीजों को परखने की शक्ति है। मनुष्य स्वयं में एक नशा है। उसमें नशापन है। इसके बावजूद मनुष्य अपने नशा को, अपने नशापन को नहीं समझ पाया है। यह समझने की चीज है कि हड़िया में नशा है, और मनुष्य में भी। हड़िया मनुष्य की उपभोग की वस्तु है, न कि मनुष्य हड़िया की। संसार के हर सृष्ठित वस्तु एवं उपभोग की तरीखा पर निर्भर करता है, कि वस्तु में गुण है, या अवगुण या दोनों ही गुण समाहित है।

(1) सृष्टि का प्रतीक – जहाँ तक मेरा हड़िया के प्रति सोच और धारणा है– "हड़िया हो आदिवासियों के लिये आदि पुरूष "ततड." द्वारा देय एक पवित्र अमृत है। जो हो लोगों का अस्तित्व एवं पहचान है। उसके जीवन का अभिन्न अंग है।"

(2) जीवन का सहारा – उत्पति काल से लेकर आधुनिक काल तक के सफर में हड़िया हो जाति के जीवन का सहारा रहा है। जगंल, पहाड़ों की अकेला जिंदगी तथा जंगल-जानवरों से प्राणों की रक्षा एवं चिलचिलाती धूप, कड़ाके की ठंड

तथा घनघोर बरसा, से अपने को, अपनी जिन्दगी को बचाने को एक मात्र सहारा 'हड़िया' ही रहा है।

(3) **पौष्टिक औषधि** – हड़िया शरीर और मस्तिष्क का पोष्टिक औषधि है। हो जाति के जिन्दगी की सफर में 'हड़िया' कई रोगों का निरोधक औषधि रहा है। आज भी हो लोग कई बीमारियों का इलाज 'हड़िया' को औषधि के रूप में सेवन करते हैं। और बिमारी से स्वास्थ होते हैं।

(4) **गुण-अवगुण की पहचान** – आज लोग हड़िया का उपयोग अपनी मर्यादा और सीमा को लांघकर करने लगा है। अपने आदि पुरूष तथा पुरखों की सेवन-विधि को भुलाकर आज हड़िया के अवगुण ही अवगुण नजर आने लगा है। आज लोग हड़िया के गुण को भुला गये हैं। उसकी पवित्रता को भुला गये हैं। वर्त्तमान में आवश्यकता है, हड़िया की अवगुणों को भुलाकर, उसके गुणों को पहचानने और समझने की है।

यह मालूम होना चाहिए कि : – सृष्टि की कोई भी वस्तु अपने आप में न तो निकृष्ट है और न ही व्यर्थ। निकृष्ट एवं व्यर्थ वह तभी तक है, जबतक मानव जाति के बीच उसकी पहचान, उसका अस्तित्व एवं उसकी उपयोगिता का सही-सही ज्ञान नहीं रहता है। वस्तु की पहचान, अस्तित्व, उपयोगिता तथा उसकी प्रकृति का ज्ञान होने पर वह वस्तु स्वतः संसाधन बन जाता है। जीवन का एक अंग, एक पहलू तथा सहारा बन जाता है। यह सही है कि वस्तु के अच्छे एवं बुरे दोनों पक्ष हुआ करते हैं। तब बात रह गयी- मानव का चाहे वह आदिवासी हो, या गैर आदिवासी हो, गरीब हो या अमीर हो, शिक्षित हो या अशिक्षित हो, हड़िया की या अंग्रेजी शराब की सही पहचान, सही समय तथा सही मात्रा में उपभोग करने का है।

(5) **सेवन का उचित तरीका** – विदित हो कि चावल, रोटी, दूध, फल जैसे खादय एवं पेय पदार्थ मानव शरीर के लिये आवश्यक तत्व हैं यह मानव शरीर को बनाता है। बढ़ाता है। उर्जा एवं गति देता है। यदि ये चावल, रोटी, दूध एवं फल आदि का आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपयोग किया जाता है, तो अनपच होता है। जिससे पेट में दर्द होता है। सर में दर्द होता है, तथा शरीर में तरह-तरह की बीमारी

होता है, जो मानव के मृत्यु का कारण भी हो सकता है। अतः खाद्य पदार्थ हो या पेय पदार्थ, हो, शरीर के सदुपयोग के अनुसार उपभोग करना चाहिए।

(6) मानसिकता में परिवर्तन की आवश्यकता

वर्त्तमान भौतिकवादी, वैज्ञानिक युग तथा विकसित समाज में आवश्यकता है - स्वयं को समझने का, पहचानने तथा स्वविवेक से निर्णय लेने का। चाहे वह आदिवासी हो या गैर आदिवासी हो स्वयं का दायित्व है कि वे हड़िया की मात्र बुरे पक्षों का ही मूल्यांकन मात्र न करें, बल्कि उन्हे इसके अच्छे पक्ष को समझें, जाने और सीखें।

हड़िया का उपभोग विवेक से करना चाहिए, ताकि उसके उपभोग से स्वयं को, घर-परिवार को, समाज को, राष्ट्र को क्षति न हो। हड़िया को नशापन के ख्याल से नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा गाँव-समाज, राष्ट्र के विकास के दृष्टिकोण से सही मात्रा में, सही समय में उपभोग करना चाहिए। इसे सेवन करना चाहिए, ताकि लोगों की इस मानसिकता की धारणा को खारीज किया जा सके कि - किसी समाज के लिए किसी जाति के लिये हड़िया एक अभिशाप नही बल्कि, एक वरदान भी है।" सांस्कृतिक कार्यक्रमों में तथा कृषि कार्यो में सहयोग के अवसरों पर हड़िया का सेवन प्रसाद के रूप में करना चाहिए, ताभी हड़िया वरदान सिद्ध होगा तथा आदि पुरुष "ततङ्" का सपना भी साकार सिद्ध होगा।"

=o=o=o=

11. मैं हड़िया हूँ मुझ में है – नशा

मैं हड़िया हूँ
मुझ में है, नशा
मैं तुम में हूँ, तुम मुझ में हो
मैं सृष्टि का प्रतीक हूँ
पुरखों का हृदय
मैं देवताओं का भोग हूँ
और पुरखों का प्रसाद
मैं लुकु-लुकुमि का मर्यादा हूँ
जाति और समाज का आन हूँ
धर्म और संस्कृति का मर्यादा हूँ
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है, नशा

मैं हड़िया हूँ
मुझ में है, नशा
हे, आदिवासी
जरा याद करो, पुरखों की जिनगनी को
मैंने ही पुरखों को –
घनघोर जगंलों में, पहाड़ों में
बाघ, भालू, सांप, बिच्छुओं से
निडर जीना सिखाया
धूप, वर्षा और ठण्ड में
मदमस्त जीने को सिखाया
जंगल पहाड़ों को काटकर
गाँव बसाना सिखाया
गढ़ा-डिपा को समतल कर
खेत खलिहान बनाना सिखाया
जीने की सफर पे
अथक परिश्रम करने सिखाया
स्वास्थ और निरोग्य जीने का
गुन सिखलाया

तभी तो पुरखों ने मुझे अपनाया
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है, नशा।
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है नशा
हे आदिवासी
मुझे देखो, मुझे समझो
गुण-दोश से युक्त
अमृत और जहर हूँ
प्यार हूँ, प्रेम भी हूँ
जोश हूँ होश भी हूँ
गम हूँ दम भी हूँ
दवा हूँ औषधि भी हूँ
रोग हूँ, निरोग भी हूँ
मैं तबाही और बबार्दी का घर हूँ
सुख और शांति का खजाना भी हूँ
तभी तो मैं पुरखों का ताज हूँ
तुम मुझे पीने और नशा की वस्तु समझा
तभी तो तुम -
पीकर बर्वाद हो गये
बाल-बच्चे तुम्हारे बेकार हो गये
खेत खलिहान जोरू-जमीन
सब कुछ तुम्हारे लूट गये
भाई-भाई में लड़ गये
गाँव-समाज में झगड़ गये
अपनों में ही मार काट गये
बिखर गये सारे अपने
न इज्जत रही न अस्मिता
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है नशा।
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है नशा

हे? आदिवासी
देख, सुनकर मेरा सीस झुका
और हो गई शर्म से पानी-पानी
मगर तुम कितने बेशर्म हो -
गाँव - गाँव में
राह - डांड़ में
हाट बाजारों में
जतरा मेला में
मुर्गा पाड़ा में
शहर की गलियों में
चौराहों में
तुम मुझे बेशर्मी से बेच रहे हो
मुझे खरीद पीते हो
पीकर होश न हवास
नशा में धृत
और
बड़े गर्व से कहते हो,-
मैं आदिवासी हूँ
पीना तो मेरा संस्कृति है
हरे? मेरा नहीं
मैं तो हड़िया हूँ
पुरखों का तो मान रखो
पुरखों ने भी मुझे मान और सम्मान दिया
और
तुम ने मुझे बेशर्मी से बेच दिया
हाय रे? आदिवासी
तुम कितना बदल गया
इज्जत का भी ख्याल नही
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है नशा।
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है नशा

हे? आदिवासी
देखो
सब देखकर हँस रहे हैं
ये आदिवासी पी के नशा है
होश नहीं है मगर जोश है
पीके गली में पड़ा है
और कह रहा है,
जिन्दगी भर आदिवासी ही रहेगा,
कभी तराकी नही करेगा
फिर देखा?
तुम्हे देखकर हँस रहा है
अन्दर-अन्दर खुश हो रहा है
बेशर्मी का हद तो देखो
तुम्हारे माँ-बहन, बहु-बेटियों से ही
खरीद पी रहा है।
और पीकर
तुम्हारे ही बहु-बेटियों को देख रहा है
उनकी इज्जत, हवस से खेल रहा है
तुम देख रहे हो
वेशर्मी से
होश आया तो कहते हो,
हाय रे भाग्य?
मैं हूँ आदिवासी
मेरा इस में क्या कसुर
पीना तो मेरा संस्कृति है
समाज का यह रिवाज है
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है नशा।
मै हड़िया हूँ
मुझ में है नशा
हे, आदिवासी

तुम महान हो
वैज्ञानिक युग का आदमी हो
बींसवी शताब्दी का आदिवासी हो
तुम पढ़े - लिखे हो
विवेकशील हो, विद्वान हो
गर्व की बात तो, तुम आदिवासी हो
मेरी कसम
तुम मुझे पीना छोड़ दो
तुम्हारे पुरखों की कसम
तुम मुझे बेचना छोड़ दो
देखो
सुन्दर सृष्टि है,
सुन्दर संसार है,
और
इस सृष्टि का तुम आदि मानव हो
तुम्हारा जीवन अनमोल है
उठो? जागो?
अपने विखरे जिन्दगी को निहारो
औरत बाल-बच्चों को सम्भालों
टूटा घर परिवार को संवारों
इज्जत आबरू को रक्षा करना
खेत खलिहान का रक्षा करना
जाति समाज को रोशन करना
मेरा यही तमन्ना है
पुरखों का भी यही अरमान है
तुम्हें कुछ कर दिखलाना है
यही मेरा तमन्ना है
मैं हड़िया हूँ
मुझ में है, नशा ।

=o=o=o=

12. गुरू लको बोदरा का धार्मिक जीवन

धार्मिक जीवन – सन् 1950 ई. से झारखण्ड में 'हो धर्म' में धार्मिक व सामाजिक सुधार आन्दोलन का समय था। इस धार्मिक आन्दोलन का उद्देश्य रहा है कि 'हो धर्म' की अन्य रूढ़िवादिता, कुरीतियाँ और कुसंस्कारों को दूर कर धर्म के वास्तविक रूप को प्रकट किया जाना था। इस धार्मिक आन्दोलन का आरम्भ प्राचीन हिन्दू धर्म के सिद्धांतों से प्रेरित रहा है, जिसका कुप्रभाव 'हो धर्म' पर भी पड़ा। चूँकि झारखण्ड के परिश्चमी सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, सरायकेला, खरसांवा और उड़िसा मयुरभंज, क्योंझर आदि जिला 'हो' लोगों का मूल निवास क्षेत्र है, और इस क्षेत्र में हिन्दू, मुसलमान, उड़िया, बंगाली आदि धर्म के लोग भी निवास करते हैं। अतः 'हो धर्म' पर अन्य धर्मो का प्रभाव पड़ना स्वभाविक था।

इस धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों से प्रभावित हो के धर्म गुरूओं ने निम्न धर्म की स्थापना की :-

स्थापित धर्म	**धर्म के स्थपित गुरू**	**धर्म से अन्य प्रभावित**
मुनि दोरोम	मुनि समाज द्वारा	हिन्दू एवं बौद्ध धर्म का प्रभाव
राम दोरोम	मोरा जामुदा ''सोका''	हिन्दू धर्म का प्रभाव
कृपा सिंदु दोरोम	कृपा सिंदु	हिन्दू एवं ईसाई धर्म का मिश्रण
सियोली दोरोम	सियोलि	हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्म का मिश्रण
लाको दोरोम	गुरु लाको बोदरा	हिन्दू , ईसाई, बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रभाव एवं समावेश

लाको

लाको बोदरा भी धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन से प्रभावित 'हो-दोरोम' की धार्मिक और सामाजिक परिर्वतनों की अनिवार्य समझते हुए 'लाको बोदरा द्वारा' 'लाको दोरोम' की स्थापना की। लाको दोरोम में 'हो दोरोम' हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, एवं जैन धर्म का समावेश है।

लाको दोरोम

लाकों बोदरा का अद्भूत प्रतिभा बचपना से ही झलक रहा था। गांव के

बुढ़ा-बुजुर्गो का कहना था कि लाको बोदरा का जन्म के दिन गांव के पश्चिमी दिशा पर ओराल पक्षी का रोना तथा जन्म के समय शरीर पर मांसल उपनयन का सटा होना तेज प्रतिभा तथा उनका उज्जवल भविष्य की ओर संकेत कर रहा था।

लाको बोदरा का स्कूली जीवन में, एक दिन अनायास ही, उसके डेरा पर साधु का आना, साधु का दर्शन होना और साधु द्वारा स्वतः ही, उसको आर्शीवाद दिया जाना, लाको बोदरा के मन-मष्तिक तथा दिलो-दिमाग में अमूल परिवर्त्तन हुआ। उसके जीवन में अध्यात्मिक शक्ति का प्रार्दुभाव हुआ। वे आध्यात्मिक पथ पर चलकर सच्ची आत्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए इस संसार को एक सोपान मानते थे।

लाको बोदरा के काल में ही समाज में, हो लोगों के शिक्षा का अभाव था। लोग अशिक्षित थे। शिक्षा के अभाव में लोग अन्धविश्वास, पूजा पाठ, ओझा-गुनी, भूत-प्रेत तथा बोंगाओं में ज्यादा विश्वास करता था। वे अपने को खुश रहने के लिए, रोग बीमारी से बचने के लिए, पालतु पशुओं को रोग बीमारी से बचाने के लिए, जंगली जानवरों एवं सांप बिच्छुओं से रक्षा करने अच्छी बारीश, अच्छी फसल होने के लिए 'देवी देवताओं' बोंगाओं का पूजा-अर्चना किया करता था तथा बोंगाओं को खुश रखने के लिए भैंस, सुअर, भेंड़ा, बकरा, मुर्गा, बत्तख एवं कबुतर आदि जीव जन्तुओं का बलि दिया जाता था। आज भी यह परंपरा हो आदिवासी में है।

लाको बोदरा ने हो समाज की भाषिक, साहित्यक, इतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दयनीय स्थिति को अपनी आंखों से देखा था। इस स्थिति से लाको बोदरा काफी चिन्तित थे। इससे उनके अन्दर ही अंदर समाज की दुर्दशा को सुधारने तथा समाज में अमूल परिवर्तन का बीज पनप रहा था।

दूसरी ओर हो समाज में हो धर्म में तथा हो लोगों में इसाई धार्मिक आन्दोलन का कुप्रभाव पड़ चुका था। अंग्रेजी शिक्षा का प्रवेश और इसाई मिशनरियों का निरंतर फैलते जाना है। विदेशी भाषा, सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के प्रचार प्रसार से लाको बोदरा में अपने सामाजिक, आर्थिक विश्वासों परम्पराओं और रीति रिवाजों के दोषों के प्रति चेतना जगी। इसाई मिशनरियों ने विशेषता हो लोगों को धर्म परिवर्तन कर ईसाई बनने के लिए विवश करना। फलस्वरूप हो लोग अपना हो धर्म छोड़कर इसाई धर्म को अपना रहे थे। परिणाम स्वरूप ईसाई न बनने के लिए इच्छुक हो लोगों तथा हो धर्म मतावलम्बियों में जागृति आई और उनके विचारों में एक बहुत

हाथ में बासी भात का पानी
जा रही है, मजदूरी करने
पहनी है, फटा कपड़ा
दिख रहा है, आर-पार
लाज-शर्म कैसे ढकेगी
नही है, अच्छा कपड़ा
माँ की गोद में, सुख की नींद में
रोते-रोते सो गया, बच्चा
माँ के स्तन में नहीं है दूध
पेट भर कैसे पिलाएगी
दूध बच्चे को
रास्ता किनारे, चिलचिलाती धूम में
सुला दिया है मासूम जीवन को
एक मुटठी दाने की चाह में
जीने और जीलाने की तमन्ना में
मजदूरी कर रही है, दुःखी दिल से
गर्मी की चिलचिलाती धूप में
पसीना में लोट-पोट
एक मुठा खाना और माड़ पानी पीकर
अथक परिश्रम से पत्थर तोड़ कर रही है
संध्या को गाधूलि में
लौट रही है, थका-मन्दा
भूखा प्यासा
तन में नहीं है पानी और खून
मासूम बच्चे माँ की गोद में
चिपका हुआ है
सूख गया है माँ का दूध
लार पानी चूस-चूस कर भूल गया है
गरीब - औरत
माँग में सिन्दुर नही

दिल में कोई पाप नही
भोलापन, चाँद सी मुस्कान
साँवला बदन छलकती जवानी
पहनी है, फटी पुरानी
आँखे झुकाए शर्म की लाली लिए
गिद्ध दृष्टि है मालिक का
मनचले ठेकेदार से उलझती
खिसकते दामन को संभालकर भागती
गाँव के किनारे झोपड़ी घर में
द्वार विहीन कुटीया में औंधी पड़ी
सिसकती, विवश, बेचारी, सुन्दर
दरिद्र आदिवासी औरत।
सो गई है फटा चटाई में
सोच रही है ओ प्रभू
गरीबी जीवन इतना दुःखदायी है?
माँ भी नहीं है, पिता भी नही है
भाई भी नही है, बन्धु भी नहीं है
जीवन साथी पति भी नहीं है, मेरा
दुःख के समुद्र में उठते गिरते तरंगे
कैसे पार करूँगी? जीवन मेरा
ओः? मेरे प्रभू !

=o=o=o=

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. तोपनो, पौलुस - छोटानागपुर के आदिवासी- सत्य भारती, राँची, -1970
2. स्वामी, दीपप एस - सिंहभूम में दमन -एकता प्रकाशन, चाईबासा - 1979
3. विधार्थी, डॉ. ललिता प्रसाद -विहार के आदिवासी - शुक्ला बुक डिपु, पटना - 1960
4. मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ -सामाजिक मानवशास्त्र की रूपर रेखा - विवेक प्रकाशन - 4-A, जवाहर नगर, दिल्ली - 1960
5. श्रीवास्तव, ए.आर.एम -जनजातीय संस्कृति-मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी -2002
6. लकड़ा, बिहारी - भारतीय संस्कृति और आदिवासी-साकेत प्रिटिंग वर्क्स, लोहरदगा
7. कोड़ाह 'हो' - कमल लोचन - इंटा बटा नला बसा-झारखण्ड झरोखा राँची-2013
8. अहमद डॉ. जियाउद्वीन - बिहार के आदिवासी - मोतीलाला बनारसीदास, लखनऊ - 1976
9. तुबिद -समु चरण- हो को आन्डोः नेकोवउ दिसुम -जनजातीय भाषा अकादमी, बिहार सरकार, राँची-1982
10. गाराई, घनश्याम -कोल्हान एवं पोड़ाहाट में मानकी मुण्डा प्रशासन व्यवस्था एवं भूमिका - हो भाषा विकास समिति चाईबासा, प. सिंहभूम
11. कोड़ाह "हो" - कमल लोचन - जोअर- झारखण्ड झरोखा, राँची -2013
12. गगराई, घनश्याम -परिचय आदिवासी हो समाज- अरीपरमपिल, मैसू -जंगल और आदिवासी शोषण के शिकार -टाईबल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग सेन्टर, चाईबासा -1988
13. राजीव, राजीव कुमार-धर्म, मत और सम्प्रदाय -पुस्तक महल, दिल्ली - 1987
14. शर्मा, डॉ. पाण्डेय रामायण प्रसाद - भारतीय वर्णश्रम सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विश्लेषण-किशोर विद्या निकेतन भदैनी, वाराणसी -1987
15. तिवारी, डॉ राम कुमार - झारखण्ड की रूपरेखा -शिवागंन, पब्लिकेशन राँची,

पटना-2004

16. एस. जे. जे. डेनी- हो इंगिलस डिक्सनरी - जेवियर हो पब्लिकेशन संत जेवियर हाईस्कूल, चाईबासा -2005
17. चौधरी, पी.सी.राय- सिहंभूम गेजेटियर्स -सुपरिडेन्ट सेक्रेरेटियट, प्रेस, बिहार, पटना - 1958
18. दत्त, डॉ. काली किंकर - बिहार में अंगरेजी राज के विरूद्ध अशान्ति - अर्थासक सचिवालय, मुद्रणालय बिहार पटना -1957
19. सागर, एस. एल. आदिवासी और संघर्ष -सागर प्रकाश मैनपुरी, उ.प्र. - 1977
20. झारखण्ड की जनजातियाँ - शर्मा, डॉ. विमला चरण, विक्रम कीर्ति - क्राउन पब्लिकेशन राँची -2006

पत्रिका

पत्रिका	अंक	रचना और लेख
1. झारखण्ड दर्पण	- फरवरी 2006	मागे लोक कथा (कमल लोचन कोड़ाह)
2. सरना फूल	- 8 सितम्बर 1992	मानकी मुण्डा प्रशासन की संक्षिप्त परिचय (कमल लोचन कोड़ाह)
3. सरना फूल	- 25 सितंबर 1993	हो धर्म और सिंङबोंगा (कमल लोचन कोड़ाह)
4. सरना फूल	- 25 मार्च 1993	सिदु दिसुम के मूल जाति की प्राचीनता : एक परिचय (कमल लोचन कोड़ाह)

=o=o=o=

परिचय

जन्म नाम – करम सिंह कोड़ाह
स्कूल नाम – कमल लोचन कोड़ाह
मान नाम – लिटा
जन्म स्थान – गाँव-पुराना गोइलकेरा, जिला-प.सिंहभूम (झारखण्ड)
जन्म तिथि – 13.6.1953
पिता – स्व. सेलाये कोड़ाह
माता – स्व. गासो कोड़ाह
पत्नी – गंगी कोड़ाह
शिक्षा – प्राथमिक विद्यालय-गोइलकेरा, मिडिल स्कूल, गोइलकेरा, मैट्रिक- गोइलकेरा हाई स्कूल, गोइलकेरा, आई. ए.-जवाहर लाल नेहरू कॉलेज, चक्रधपुर, बी.ए.-टाटा कॉलेज, चाईबासा, एम.ए.-जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची वि.वि राँची।
सेवा – सेवा निवृत्त, अवर सचिव, कार्मिक प्रशासनिक सुधार तथा राजभाषा विभाग, झारखण्ड, सरकार।

प्रकाशित कृतियाँ – जोअर, इटा बटा नला बसा, बिर बुरू बोंगा बुरू, सरजोम बा तरल।

प्रकाश्य – सरजोम बा डुम्बः (लोक गीत), पेरेम सनङ (कविता), बले बुरू ओन्डोः सिङ राजा (लेख), मानकी मुण्डा प्रशासन (लेख), हो लोक गीत : एक संग्रह, लुकु, लाको बोदरा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

पुरस्कार –

- राजभाषा विभाग, बिहार सरकार द्वारा "बिरसा भगवान ग्रंथ प्रकाशन अनुदान 1988–89 पुरस्कार से सम्मानित।
- कला संस्कृति खेलकूद विभाग, झारखण्ड द्वारा हो-भाषा साहित्य के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये 2008 से सम्मानित।
- विश्व आदिवासी दिवस पर पद्मश्री डॉ. रामदयाल मुण्डा स्मृति सम्मान-2012 से सम्मानित।
- हो हयम सनागोम जुमुर, राँची द्वारा हो-भाषा साहित्य के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये "ओत् गुरू कोल लको बोदरा स्मृति सम्मान-2012 से सम्मानित।
- सिंहभूम आदिवासी समाज, राँची द्वारा हो भाषा साहित्य एवं सामाजिक क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये 2011 से सम्मानित।
- झारखण्डी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा द्वारा हो भाषा साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय एवं अनुकरणीय योगदान हेतु - "अखड़ा-सम्मान-2013" से अलंकृत।
- प्रसार भारती, दूरदर्शन केन्द्र, राँची द्वारा 'हो' रचनाकार के लिये 2014 में सम्मानित।

PUBLISHER :-

Jharkhand Jharokha

Shop No. D.G. 03, New building, New Market
Ratu Road, Ranchi (Jharkhand),Pin-834001
Mob. - 09973112040, 09471160792
E-mail : jharkhandjharokha@yahoo.com

ISBN : 978-93-81720-92-9

978-93-81720-92-9

मूल्य : 130.00 रू.